Chapter-2

2

:: द्वितीय अध्याय ::

:: प्रेमचन्दकाल के दलित-चेतना से संपन्न उपन्यास ::

A Dhaval PRODUCT A'BAD

: द्वितीय अध्याय :

~~विषय प्रवेश~~ : प्रेमचन्द काल के दलित-चेतना संपन्न उपन्यास :

प्रास्ताविक :

जहां तक मानव-जीवन की समस्याओं और उसके यथार्थ आंकलन का प्रश्न है, उपन्यास उनके लिए सर्वथा उपयुक्त विधा है। आधुनिक काल के अन्तर्गत पूंजीवादी सभ्यता ने जो साहित्यिक भेंट दी उनमें उपन्यास सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। Ralph फोक्स ने इस सन्दर्भ में कहा है —" Novel is the most important gift of Bourgeois or capitalist civilization to the

World imaginative culture" 1
नाटक संगीत , चित्रकला, मूर्तिकला आदि नानाविध कलाओं का विकास आधुनिक काल में हुआ है , परन्तु इन सभी कलाओं का इतिहास बड़ा प्राचीन रहा है, फलतः उनका विकासकाल बहुत ही लम्बा है और उनकी प्रायः सभी समस्याएं हल हो चुकी हैं किन्तु उपन्यास की सारी समस्याओं में से केवल एक ही समस्या हल हुई है , वह समस्या बड़ी सरलतम समस्या है - कथा करने की समस्या । शेष सारी समस्याएं नई हैं ।[2] Ralph Fox महोदय ने अपने ग्रन्थ का नाम ही "Novel and the people " रखा है, इससे एक बात तो निश्चित रूप से कही जा सकती है कि उपन्यास का लोगों के जीवन से गहरा सम्बन्ध है । "उपन्यास" शब्द उप + न्यास से व्युत्पन्न हुआ है । "उप" का अर्थ होता है समीप और "न्यास" का अर्थ हुआ - "रखना" । अतः पुरे शब्द का अर्थ हुआ - समीप रखना । अब प्रश्न यह होता है कि उपन्यास हमें किसके समीप रखता है ? उत्तर है - जीवन के समीप । अर्थात् उपन्यास में हमारा साक्षात्कार जीवन से जीवन की समस्याओं से है , जीवन के प्राण प्रश्नों से जीवन के बुनियादी सरोकारों से होता है । फलतः साहित्य की अन्य किसी भी विधा की तुलना में उपन्यास में ऐसे तत्व, घटनाएं या पात्र अधिक मिलते हैं जो जीवन के किसी न किसी स्तर पर समाज के किसी न किसी प्रकार के शोषण इस अर्थ के शिकार , इस अर्थ में उपन्यास एक शोषण विरोधी साहित्यिक विधा है । यदि कोई लेखक समाज की किसी रूढ़ि, अंधविश्वास, विषमता, अन्याय इत्यादि पर कुठाराघात करना चाहता है तो उपन्यास उसके लिए सर्वथा समीचित विधा रहेगी । हमारे समाज में नारी और दलित दोनों का धर्म और शास्त्र के औजारों द्वारा भयंकर शोषण हुआ है । अतः उपन्यासों में दलितों की समस्याओं का उभरकर आना स्वाभाविक ही माना जाएगा , परन्तु भारतीय समाज में दलित समस्याओं से जुड़ी हुई चेतना कुछ बाद में विकसित हुई । प्रेमचन्द पूर्वकाल

के लेखकों का ध्यान नारी शिक्षा, अनमेल विवाह, वृद्ध विवाह, बाल - विवाह, दहेज-प्रथा , जैसी सामाजिक समस्याओं की ओर तो गया था परन्तु दलित चेतना की ओर उनका ध्यान बहुत बाद में गया । दलितों के प्रति हिन्दुओं के तिरस्कारों के कारण बहुत से दलित शनैः-शनैः इसाई धर्म की ओर आकृष्ट हो रहे थे । श्री एवं श्रीमती कोलिन्स द्वारा रचित मलयालम उपन्यास "घटक बधम्" (1878) तथा आर्च डीकन के कोशी द्वारा प्रणित "पुलेली कुच्चु" (1882) तथा असमिया उपन्यास "कामिनी कान्त - चरित्र" (लेखक ए. के. गरनी - 1877)[3] जैसे उपन्यासों में इसका यथार्थ आंकलन हुआ है परन्तु इस प्रकार का कोई उपन्यास हमें हिन्दी में पूर्व प्रेमचन्द काल में उपलब्ध नहीं होता है । अतः जब दलित चेतना सम्पन्न उपन्यासों पर दृष्टिपात करने की बात आती है तब प्रेमचन्द काल से ही उसकी शुरूआत होती है । दलित चेतना सम्पन्न उपन्यासों पर ऐतिहासिक कालक्रम की दृष्टि से विचार करें तो उन्हें स्पष्टतया दो खंडों में विभाजित कर सकते हैं --(क) प्रेमचन्द काल के दलित चेतना सम्पन्न उपन्यास तथा (ख) प्रेमचन्दोत्तर काल के दलित चेतना सम्पृक्त उपन्यास ।

प्रेमचन्दकाल के दलित चेतना सम्पन्न उपन्यास :—

(1) "बुधुआ की बेटी" :-

बुधुआ की बेटी पाण्डेय बेचेन शर्मा "उग्र" द्वारा प्रणीत अछूत समस्या से सम्पृक्त उपन्यास है । प्रथमतः यह उपन्यास 1928 में प्रकाशित हुआ था । उसके बाद 1955 में यही उपन्यास "मनुष्यानन्द" नाम से प्रकाशित हुआ । इसमें लेखक ने अछूतोद्धार तथा नारी स्वतंत्रता की समस्या पर विचार किया है । बुधुआ चमार की बेटी रधिया अतीव सुन्दरी युवती है । घनश्याम नामक एक युवक जो विलासी , लम्पट एवं कपटी है । छल-कपट और प्रलोभन के द्वारा रधिया पर बलात्कार करता है और इस प्रकार उसकी जवानी का सर्वनाश कर देता

है । इस घटना का बड़ा कुप्रभाव रधिया पर पड़ता है और वह समग्र पुरूष जाति से उसका प्रतिशोध लेने के लिए प्रतिबद्ध हो जाती है । वह अपने सौन्दर्याकर्षण से पुरूषों को आकृष्ट करती है, अपने प्रेमजाल में फंसाती है और अन्ततः उन्हें छोड़कर अर्धविक्षिप्त-सा बना देती है । इस प्रकार घनश्याम के कुकर्म और अमानुषी व्यवहार रधिया को क्रूर बना देती है । वह क्रुद्ध शेरनी बनकर स्वार्थी पुरूष जाति के विनाश का व्रत ठान लेती है । लेखक ने रधिया और घनश्याम के वासनात्मक प्रेम के चित्रण में यथार्थवाद की सामान्य सीमाओं का भी उल्लंघन कर दिया है । इससे कहीं कहीं उपन्यास में अश्लीलता का भी समावेश हो गया है । इस उपन्यास में जहां एक तरफ अछूत जाति के सामाजिक, आर्थिक और दैहिक शोषण मिलता है वहां दूसरी तरफ मौलवियों पीरों और फकीरों की कुत्सित कार्यकलाओं का भी अतियथार्थवादी शैली में चित्रण हुआ है । उपन्यास की मुख्य समस्या अछूतोद्धार तथा नारी स्वातंत्र्य की समस्या है । लेखक ने यथार्थ सामाजिक भूमि पर अछूतोद्धार के आन्दोलन को चित्रित किया है । बुधुआ और अघोरी मनुष्यानन्द के माध्यम से अछूतों में जीवन जागरण का मंत्र फूंका गया है । उग्र जी का सोचना है कि यदि समाज में थोड़े से उच्च वर्ण के लोग चाहें तो करोड़ों अछूतों के जीवन का उद्धार हो सकता है । अछूत समस्या भारतीय समाज में नासूर है । वह हिन्दू समाज का कलंक है उसे सुलझाने के लिए जहां एक तरफ अछूतों को शिक्षित करना होगा, वहां दूसरी तरफ उन्हें आत्मबल भी प्रदान करना होगा और यह तब तक संभव नहीं है जब तक उनका आर्थिक पक्ष सुदृढ़ न हो । उपन्यासकार यह भी सूचित करता है कि अछूत स्वयं संभलें । अपने आपको मनुष्य घोषित करें तथा संगठित, शिक्षित और संस्कारित होकर अच्छे से अच्छे लोगों समक्ष आदर पाने योग्य बनें । इसके लिए उन्हें अपने गन्दे परिवेश से भी ऊपर उठना होगा, दारू, ताडी, गांजा, अफीम आदि के सेवन का त्याग करना होगा और गाली-गलौज और असभ्य आचरण से बचना होगा । अछूतों को चाहिए

कि वे अपने बच्चों को विभिन्न कलाओं में दक्ष करें और उन्हें अच्छी सी अच्छी शिक्षा दिलाने के उपयुक्त प्रयत्न करें। 84 अछूतोद्धार का दूसरा पक्ष आर्थिक दृढ़ता से सम्बद्ध है जिसे उपन्यासकार पंचायत के संगठन और आन्दोलनों के माध्यम से सुलझाना चाहता है। उग्र जी के विचार से अछूतों को चाहिए कि वे अपनी पंचायतें बनायें, पंच चुने और उनकी आज्ञाओं का पालन करें और इस प्रकार अपने अधिकारों के लिए संगठित होकर आन्दोलन चलायें जब तक वे एकजुट नहीं होंगे, उन्हें सफलता नहीं मिलेगी, उनकी एकता ही समाज के उच्च वर्ग के लोगों को झुका सकती है और इसके द्वारा ही वे उनको यह सोचने पर बाध्य कर सकते हैं कि अछूतों का भी कोई अस्तित्व है। अतः जब तक अछूत समाज में बेकार तकरार, झगड़े-फसाद, कलह, शराबखोरी की प्रधानता होगी, तब तक उनका उद्धार नहीं होगा और तब तक ऊंची जाति के लोग उनको परतन्त्र और नरक के कीडे बनाये रखेंगे। इस प्रकार अछूत समस्या की दृष्टि से प्रेमचन्द युग का यह एक महत्वपूर्ण उपन्यास है।

(2) कर्मभूमि :—

प्रेमचन्द जी द्वारा प्रणीत कर्मभूमि उपन्यास में तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक समस्याओं के साथ साथ अछूत समस्या का भी विस्तृत वर्णन किया गया है। यहां पर प्रेमचन्द भी न केवल अछूत समस्या के यथार्थ पहलुओं का आंकलन करते हैं अपितु उनका समाधान भी प्रस्तुत करते हैं। प्रेमचन्द के समय में अछूतों को अपवित्र माना जाता था और उनके खान-पान का निषेध किया जाता था। प्रेमचन्द जी उनके बड़े उग्र विरोधी थे। प्रस्तुत उपन्यास में अपने पात्रों के माध्यम से उन्हें उन्हें सम्पूर्ण सन्मान तथा सभी प्रकार का अधिकार दिलवाते हैं। कर्मभूमि उपन्यास का नायक अमरकान्त गांव में जाकर न केवल अछूतों के साथ उठता बैठता और खाता पीता है बल्कि उनके उद्धार के लिए सभी प्रकार के कार्य भी करता है। अमरकान्त गांधीवादी विचारों से प्रभावित है।

और अछूतोद्धार के लिए प्रायः उन सभी उपायों को क्रियात्मक रूप देता है जिसमें गांधी जी को विश्वास था । अमरकान्त सामाजिक आन्दोलन को राजनीतिक रूप दे देता है और अछूतों की समस्या का समाधान स्वाधीनता में देखता है । परन्तु यहां लेखक की कुछ मर्यादाएं भी सामने आती हैं । वे अछूत आन्दोलनों का नेतृत्व सवर्ण हिन्दुओं से करवाते हैं । ग्रामीण धरातल पर अमरकान्त तथा नगरीय धरातल पर डॉ० शांतिकुमार और सुखदा आदि सवर्ण हिन्दू अछूतोद्धार के आन्दोलन को गति देते हैं । डॉ० शांतिकुमार तथा सुखदा अछूतों के मंदिर प्रवेश के लिए भी आन्दोलन छेड़ते हैं । इस प्रकार अछूत वर्ग वर्ग की समस्याओं को इस सवर्ण हिन्दू नेता अपनी समस्या मानकर झेलते हैं और उनके आन्दोलनों का उत्तरदायित्व भी स्वयं ग्रहण करते हैं । यह सब गांधीवादी फारमूला के आधार पर चलता है । इस उपन्यास के सन्दर्भ में डॉ० रामदरश मिश्र ने लिखा है -"अमरकान्त समाज सेवक है वह समाज सेवा के ऊपरी रूप से होता हुआ बुनियादी रूप तक पहुंच जाता है । वह जाने-अन्जाने चमारों के गांव में पहुंच जाता है और वह जैसे पहचान जाता है कि सेवा के प्रथम हकदार यही हैं और सेवा का अर्थ केवल सामाजिक भेदभाव दूर करना नहीं बल्कि उन्हें आर्थिक शोषण से मुक्ति दिलाना है ।" [5]

प्रस्तुत उपन्यास में अछूतोद्धार से सम्बद्ध जो विचार व्यक्त हुए हैं वे गांधीवादी दृष्टिकोण से प्रभावित हैं क्योंकि जिन दिनों में कर्मभूमि लिखा जा रहा था प्रेमचन्द पूर्णतया गांधीवाद के प्रभाव में थे । अछूतों को मंदिर में प्रवेश दिलाने हेतु जो संघर्ष इस उपन्यास में दिखाया गया है वह लोगों की संकुचित धार्मिक मनोवृत्ति का परिचायक है । उस जमाने में बहुत से सुधारवाद का नारा लगाने वाले लोग भी अछूतों की बात आते ही अपनी सहिष्णुता चूक जाते थे । अछूतों को उनके बराबर स्थान दिया जाय यह उनकी अहमवादी सवर्ण चेतना को स्वीकार नहीं था । डॉ० प्रताप नारायण टंडन के मतानुसार अछूत समस्या का एक महत्वपूर्ण पक्ष आर्थिक भी था ।" [6] डॉ० श्रीराम वशिष्ट ने प्रस्तुत उपन्यास की समालोचना करते

हुए इस पक्ष को उद्घाटित किया है .. "उनको (अछूतों को) यह विश्वास था कि उनके जीवन में यातनाओं का होना ईश्वरीय विधान है और उनकी आत्मा में असंतोष में भी संतोष का रूप ग्रहण कर लिया था । दूसरी ओर धन के स्वामियों ने इन अछूतों को शोषण का केन्द्र बनाकर अपने हाथ पैर को हिलाने की कसम खा ली थी । बेचारे घोर परिश्रम करके भी अपना पेट भरने में लाचार थे । धर्म के आधार पर जो वर्गीकरण था उसमें अछूत वर्ग अथवा शूद्र ही ऐसे थे जिनकी दशा अधिक दयनीय थी । [7]

कर्मभूमि की मूल कथा सत्याग्रह आन्दोलन पर आधारित है । अछूतों और किसानों की समस्या उसी का अंग बनकर आयी है । इस उपन्यास में प्रेमचन्द ने हमारे समाज की आर्थिक विषमता का यथार्थ चित्रण अंकित किया है । उन्होंने एक ओर नगर के पूंजीपति और गांव के जमींदार वर्ग के ऐश्वर्य को चित्रित किया है वहां दूसरी तरफ नगर के छ अछूत एवं किसान के खन्डहरनुमा जीवन को दृष्टिगत करवाया है । अछूतोद्धार संबंधी जो विचार यहां प्रेमचन्द द्वारा व्यक्त हुए हैं उन पर गांधीवादी दर्शन का प्रभाव है । अछूतों की निरक्षरता और कुसंस्कारों को

में लिए कर्मभूमि में प्रेमचन्द जी ने गांधी जी के अछूतोद्धार से प्रेरणा ली वह हो ऐसा प्रतीत होता है । इस उपन्यास का एक प्रमुख पात्र अमरकान्त घर छोड़कर अछूतों के गांव में जाकर बसता है । गंगा के किनारे अछूत रैदास परिवार का एक छोटा-सा गांव है । इस गांव में अमरकान्त एक पाठशाला शुरू करता है । जिस समय अमरकान्त इस पाठशाला के काम में लगा हुआ था, उसी समय शहर में उसकी पत्नी सुखदा अछूतों के मंदिर प्रवेश के लिए सत्याग्रह में भाग लेती है । शहर में चलने - वाला यह सत्याग्रह डॉ० शांतिकुमार के नेतृत्व में चल रहा था । अमरकान्त जनसेवा का कार्य जिस गांव में करता है उसका जमींदार एक महंत जी हैं । जो हर प्रकार से किसानों का शोषण कर रहा था । अछूतों की सेवा के साथ अमरकान्त जमींदार के खिलाफ लगानबंदी का आन्दोलन छेड़ देता

है । एक संभ्रान्त और कुलीन परिवार के युवक को अपने गांव में रैदासों के बीच काम करते हुए देखकर सलोनी काकी को आश्चर्य होता है तब अमरकान्त सलोनी काकी को विश्वास दिलाते हुए कहता है --" मैं जाति - पांति नहीं मानता माता जी । जो सच्चा हो, वह चमार भी हो, आदर के योग्य है, जो दगाबाज , झूठा, लंपट हो वह ब्राह्मण भी हो तो आदर के योग्य नहीं है ।" 8

प्रस्तुत उपन्यास के सन्दर्भ में डा० मन्मथनाथ गुप्त लिखते हैं कि-"जिन दिनों यह पुस्तक लिखी गयी थी, उन दिनों (1930 के बाद) अछूत समस्या को लेकर सवर्ण हिन्दुओं में कुछ आन्दोलन हो रहा था । इसलिए उसमें हमें आचर्य नहीं है कि इस उपन्यास की केन्द्रीय समस्या अछूत समस्या के साथ किसानों की समस्या भी संयुक्त है । प्रेमचन्द ने इस उपन्यास में शहर के अछूतों तथा गांव के अछूतों की समस्या को अलग अलग करके दिखलाया है । शहर के अछूतों की समस्या को उन्होंने मंदिर प्रवेश तथा कथा सुनने के अधिकार के रूप में अर्थात् नागरिक स्वतंत्रता के लिए युद्ध के रूप में दिखलाया है , किन्तु गांव के अछूतों की समस्या में उन्होंने इस समस्या के अन्तर्निहित पहलू को भी स्पष्ट करके दिखने की चेष्टा की है कि किस प्रकार अछूतों की समस्या मौलिक रूप से एक आर्थिक समस्या ही है ।" 9

डा० मन्मथनाथ गुप्त ने कर्मभूमि की आलोचना करते हुए शूद्रों की स्थिति को लेकर उसका ऐतिहासिक दृष्टि से भी विवेचन किया है " पहले सब आर्य एक वर्ण थे, फिर ऐसा ज्ञात होता है कि ईरान में ही आर्यों में किसी न किसी प्रकार की वर्ण व्यवस्था का सूत्रपात हो चुका था किन्तु अनार्यों के संस्पर्श में आकर शूद्र वर्ण की उत्पत्ति हुई । स्मरण रहे जब वर्णों का अच्छी तरह प्रसारीकरण हुआ , उस समय शूद्रों का काम सेवा करना बनाया गया था । मनुस्मृति में हम शूद्रों को इसी रूप में चित्रित पाते हैं । प्राचीन आर्य समाज में शूद्र ही सबसे अधिक शोषित वर्ग थे । अवश्य बाद को बुद्ध शूद्र राजा भी हुए, किन्तु साधारण शूद्रों की हालत

इससे कुछ सुधरी नहीं, ऐसा ज्ञात होता है कि कुछ आर्य भी आर्थिक कारणों से शूद्र वर्ग में जा गिरे । इसी प्रकार ऐतिहासिक रूप से यह भी देखा गया है कि कई जातियों के वंश को तो अछूत समझा गया और दूसरों को उच्च मान लिया गया । इस प्रकार यों एक अंश को अछूत और दूसरे वर्ण को उच्च वर्ण का गिना गया , वह कोई आकस्मिक बात नहीं थी , बल्कि पता चला है कि जिस अंश के लोगों की आर्थिक अवस्था अच्छी रही, वह तो उच्च समझा गया और दूसरा अंश नीच और छोटा समझा गया । ऐसी हालत में अछूत समस्या मूलतः एक आर्थिक समस्या है, अवश्य इतने सैकड़ों वर्षों से जो धारणायें समाज के शरीर में घर कर गयी हैं , परिवार विशेष के आर्थिक उन्नयन से नष्ट नहीं हो जाएगी । इसलिए अछूतों के आर्थिक रूप से उन्नयन के साथ साथ यह भी जरूरी है कि विचारों की सतह पर भी उनका संग्राम चले और वे इस बात को मनवा लें कि उनमें और सवर्ण हिन्दुओं में कोई फर्क नहीं है । यदि पूछा जाय कि अछूत समस्या के समाधान के लिए आर्थिक उन्नयन जरूरी है या सवर्ण हिन्दू तथा अछूतों के विचारों में परिवर्तन अधिक जरूरी है तो यह एक निरर्थक प्रश्न होगा । दोनों समस्याओं का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है ।" 10

उस उपन्यास में अछूत और दलित वर्ग की भयावह स्थितियों का वर्णन यथार्थतः हुआ है । गांवों तथा नगरों में उनकी स्थिति एक समान है । उनके रहने के स्थान नरकतुल्य हैं । इस उपन्यास में दलित वर्ग के गन्दे आवासों की समस्या को भी उठाया गया है । म्युनिसिपल बोर्ड के कनदो मालेतुजार लोगों की सेवा में ही लगे रहते हैं और गरीबों की झोपड़ियों की ओर कोई ध्यान नहीं देता है । इस मुहिम को लेकर दलित जातियां पहली बार संगठित होकर आन्दोलन का रास्ता अखत्यार करती हैं । वे लोग अपनी पंचायत करके संघर्ष की तैयारियों में जुट जाते हैं और हड़ताल का फैसला कर लेते हैं । हड़ताल से पहले एक बार अफसरों से मिल-कर समस्या को सुलझाने का प्रयत्न किया जाता है जिसका कोई परिणाम नहीं आता, अतः हड़ताल होती है , अछूतों को अब अपने सत्व का

परिज्ञान हो गया है और वे अब किसी प्रकार के अन्याय और उपेक्षा को बरदास्त करने के लिए तैयार नहीं हैं । [11] उपन्यास का एक दलित पात्र मुरली खटी के विद्रोह के स्वर में कहता है -" किसी को तो महल और बंगला चाहिए, हमें कच्चा घर भी न मिले । मेरे घर में पांच जने हैं उनमें से दो-चार आदमी महीने भर से बिमार हैं । उस काल कोठरी में बीमार न हो तो क्या हो., सामने से गन्दा नाला बहता है । सांस लेने में नाक फटती है ।" [12]

अन्ततः अछूतों की संगठित शक्ति के समक्ष अधिकारियों को झुकना पड़ता है और उनकी मांगों को स्वीकृत करना पड़ता है । कर्मभूमि उपन्यास में दलित वर्ग के आर्थिक स्वावलंबन के लिए जितना तीव्र संघर्ष हुआ है प्रेमचन्द युग के किसी अन्य उपन्यास में उतना तीव्र संघर्ष उपलब्ध नहीं होता है , इतना ही नहीं, प्रेमचन्द के भी अन्य उपन्यासों में ऐसा संघर्ष दृष्टिगत नहीं होता । इसमें हम देख सकते हैं कि दलित शोषित वर्ग सामाजिक आर्थिक और धार्मिक क्षेत्र में गैरबराबरी को समाप्त करने के लिए संगठित होकर संघर्ष करते हैं ।

प्रेमचन्द की दूरंदेशी दृष्टि ने कदाचित बहुत पहले ही यह देख लिया था कि अछूतों की समस्या का उत्स उनके आर्थिक शोषण में है । उनकी मूल समस्या आर्थिक ही है । यहां प्रेमचन्द जी यह भी स्पष्ट करते हैं कि शराबबन्दी , मुर्दा मांसखानेवाली प्रथा में सुधार और शिक्षा प्रचार से ही दलितों की समस्या का हल नहीं होने वाला । "एकै साधे सब सधै " की नीति के अनुसार जिस दिन आर्थिक दृष्ट्या वे सद्दर हो जाएंगे उस दिन उक्त बदियां भी अपने आप समाप्त हो जाएंगी ।

कुछ यथास्थितिवादी लोग यह कहते हुए पाये जाते हैं कि रंग, वर्ग, जाति आदि के आधार पर भेदभाव की नीति समग्र विश्व में है । परन्तु यहां यह तथ्य ध्यातव्य रहे कि भेदभाव भेदभाव में भी अन्तर है । भारत में जिस प्रकार धर्म और शास्त्रों के नाम पर करोड़ों लोगों को पशुओं की तरह जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य किया जाता है उसका कोई

उदाहरण दुनिया के किसी देश में नहीं मिलता । अस्पृश्यता हिन्दू समाज का ही कलंक है । लोग कुत्ते बिल्लियों को पालते हैं ,उन्हें छू सकते हैं पर एक मनुष्य को छूने में, उनका धर्म भ्रष्ट हो जाता है । इस कलंक को मिटा देने की मुहिम सन् 1830 ई.स. से प्रारम्भ हुई थी । "कर्मभूमि" (1932) में हमें इन प्रयत्नों की झांकी मिलती है । [13]

इस उपन्यास में हमें पहली बार देखने को मिलता है कि दलित चेतना की आग भडकने लगती है और संघर्ष धार्मिक और सामाजिक समस्याओं तक सीमित न रहकर आर्थिक मामलों को छूने लगता है । बढ़ती हुई दलित चेतना के कारण उस तथाकथित विश्वास को ध्वंश कर दिया जाता है कि दरिद्रता और सम्पन्नता पूर्व जन्म के कर्म का परिणाम है । अब लोग ईश्वर, धर्म और शास्त्र के नाम पर परम्परागत रूप से चल रहे अन्याय, शोषण और अनीति का क्रियात्मक रूप से विरोध करते रहे हैं , फलतः वर्गीय चेतना और संघर्ष गहराने लगता है । चमारों का चौधरी गुदड पूर्व जन्म के फलों के संस्कारवादी सिद्धान्तों का विरोध करते हुए कहता है —" ये सब मन को समझाने की बातें हैं बेटा, जिससे गरीबों को अपनी दशा पर सन्तोष रहे और अमीरों के राग रंग में किसी तरह की बाधाएं न पड़े । लोग समझते हैं कि भगवान ने हमको गरीब बना दिया । आदमी का क्या दोष ? पर यह कोई न्याय नहीं है कि हमारे बाल - बच्चे तक काम में लगे रहे और भोजन न मिले और एक-एक अफसर को दश - दस हजार की तलब मिले ।" [14]

प्रस्तुत उपन्यास में मुन्शी प्रेमचन्द जी का प्रयोजन दलित वर्ग के लोगों की मानवता, सहृदयता, त्याग, स्वार्थहीनता और सरल जीवन का चित्रण करना भी रहा है । इसके द्वारा लेखक यह प्रमाणित करना चाहते हैं कि उक्त मानवीय गुणों पर केवल उच्चवर्गीय लोगों का ही अधिकार नहीं है अपितु इन नीच कहे जाने वाले लोगों में भी मानवता के दीप टिमटिमाते हुए दृष्टिगोचर हो रहे हैं । इसमें सलोनी, मुन्नी, गुदड, मुरली जैसे दलित पात्र अमरकान्त, सुखदा, डॉ0 शांतिकुमार जैसे आदर्शवादी पात्रों

के सम्मुख इक्कीस ही ठहरते हैं । प्रेमचन्द इस उपन्यास में बिल्कुल यथार्थवादी ढंग से सोचते हैं । वे भलीभांति समझ गये हैं कि आर्थिक समानता की प्राप्ति के बिना धार्मिक समानता का कोई अर्थ नहीं है । फलतः उन्होंने जहां एक तरफ दलितों के मंदिर प्रवेश के मुद्दे को लेकर उनमें सत्व जगाने का प्रयत्न किया है वहां दूसरी तरफ जमींदारों से अपने आर्थिक अधिकारों के लिए संघर्ष करते हुए दिखाया है । इस प्रकार कर्मभूमि उपन्यास हिन्दी उपन्यासों में दलित चेतना और वर्गीय चेतना की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है ।

§3§ गोदान :--

प्रेमचन्द की औपन्यासिक कला का चरमोत्कर्ष गोदान है । आलोचकों ने उसे कृषक जीवन का महाकाव्य कहा है परन्तु कृषक जीवन की व्यथा कथा के साथ प्रस्तुत उपन्यास में अनेक स्थानों पर दलित वर्ग की नाना स्थितियों में का चित्रण भी लेखक ने किया है । प्रस्तुत उपन्यास में दलित वर्ग का चित्रण मातादीन तथा शिलिया की कथा के माध्यम से हुआ है । होरी, धनिया की कथा के समानान्तर शिलिया चमारिन की कथा को भी लेखक ने अग्रसरित किया है । मातादीन पंडित, दातादीन का सुपुत्र है । शिलिया से उसका अवैध सम्बन्ध है उससे शिलिया को एक अवैध पुत्र भी प्राप्त होता है परन्तु मातादीन उससे विवाह नहीं करता । उसके साथ शारीरिक सम्बन्ध रखने में उसके ब्राह्मणत्व को कोई आंच नहीं आती परन्तु उससे शादी करने पर उसके ब्राह्मणत्व को नष्ट हो जाने का खतरा है, यहां लेखक ने यह स्पष्ट किया है कि उच्च जाति के लोग जिस प्रकार निम्न वर्ग की स्त्रियों का दैहिक शोषण करते हैं । उच्च वर्ग के लोगों की इस दोहरी नैतिकता पर प्रेमचन्द व्यंग्य करते हैं । शिलिया की मां मातादीन पर व्यंग्य करते हुए कहती है --"तुम बड़े नेमिधर्मी हो, उसके साथ सोओगे लेकिन उसके हाथ का पानी नहीं पिओगे । यही चुड़ैल

है कि सब सहती है, मैं तो ऐसे आदमी को माहोर दे देती ।"[15]
दलित नारी सवर्ण हिन्दू के लिए भोलिप्सा का साधन मात्र है ।

मातादीन का शिलिया के साथ जो सम्बन्ध है उसके सम्बन्ध में स्वयं प्रेमचन्द जी का कथन है --" शिलिया का तन और मन लेकर भी बदले में वह (मातादीन) कुछ न देना चाहता था । शिलिया अब उसकी निगाह में काम करने की मशीन थी और कुछ नहीं । उसकी ममता को वह बड़े कौशल से नचाता था ।"[16]

मातादीन का शिलिया से जो सम्बन्ध है उसमें प्रारम्भिक अवस्था में तो रूपाकर्षण की भावनाा थी परन्तु बाद में उसमें मातादीन का अपना स्वार्थ भी जुड़ जाता है । शिलिया के रूप में उसे एक मुफ्त की मजदूरिन मिल जाती है । जो तनतोड़ मेहनत करती है । शिलिया के सम्बन्धों को लेकर निगोरी सिंह जब मातादीन पर व्यंग्य करता है तब मातादीन उसे कहता है --" और फिर मेरा तो शिलिया से जितना उबार होता है, ब्राह्मण कन्या से क्या होगा ? वह तो बहुरिया बनी बैठी रहेगी, बहुत होगा रोटिया पका देगी । यहा शिलिया अकेले तीन आदमियों का काम करती है और मैं उसे सिवाय रोटियों के और देता भी क्या हूँ ?"[17]

इस प्रकार मातादीन न केवल शिलिया का दैहिक शोषण करता है, वह उसका पारिश्रमिक शोषण भी करता है ।

यौवनाकर्षण और रूपाकर्षण के प्रारंभिक दौर में मातादीन ने जनेव हाथ में लेकर शिलिया को बचन दिया था कि वह उसे एक ब्याहता की तरह रखेगा, परन्तु दो साल बाद ही जब शिलिया खलिहान थोड़ा-सा अनाज किसी को देती है तब उस मुट्ठीभर अनाज के लिए मातादीन उसका पानी उतार लेता है और उसे डाटता-फटकारता रहता है । शिलिया जब पूछती है कि "तुम्हारी चीज में मेरा कुछ अखितयार नहीं ? तो मातादीन बड़ी निर्लज्जता से कहता है -"नहीं तुझे कोई अखितयार नहीं । काम करती है , खाती है । जो तू चाहे कि खा भी , लुटा भी तो

तो यह यहां न होगा, अगर तुझे यहां परता न पड़ता हो, कहीं और जाकर काम कर , मजूरों की कमी नहीं है ।" [18]

अपने मां-बाप तथा पूरी बिरादरी के खिलाफ जाकर शिलिया मातादीन के साथ रहती थी । अतः जब थोड़े से अनाज के लिए मातादीन शिलिया को अपमानित करता है तब शिलिया के पिता हरखू तथा बिरादरी वाले तिलमिला उठते हैं और शिलिया के इस अपमान का बदला लेने के लिए तैयारियां कर लेते हैं । वे मातादीन के पास जाकर कहते हैं - " तुम हमें ब्राह्मण नहीं बना सकते तो मुदा हम तुम्हें चमार बना सकते हैं । हमें ब्राह्मण बना दो । हमारी सारी बिरादरी बनने को तैयार है । जब यह समरथ नहीं है तो तुम भी चमार बन जाओ ।" [19]

अतः वे लोग मातादीन को पकड़ कर उसके मुंह में जबरजस्ती हड्डी ठूंस देते हैं और अपनी समझ के अनुसार उसे अछूत बना देते हैं । यहां पर प्रेमचन्द ने हिन्दू समाज के दोहरे प्रतिमानों पर करारा व्यंग्य किया है । हमारी समाज व्यवस्था और धर्मव्यवस्था में किसी अछूत को ब्राह्मण बनने का अधिकार नहीं है । परन्तु यदि कोई सवर्ण हिन्दू किन्हीं कारणों से धर्मभ्रष्ट होकर अछूत हो जाता है तो उसे उस जाति विशेष में पुनः प्रवेश देने की व्यवस्था है ।यथा- मातादीन को कई सौ रूपया खर्च करने के बाद अन्त में काशी के पंडितों ने फिर से उसे ब्राह्मण बना दिया । उस दिन बड़ा भारी हवन हुआ, बहुत से मन्त्र व श्लोक पढ़े गये । मातादीन को शुद्ध गोबर और गोमूत्र खाना-पीना पड़ा । गोबर से उनका मन पवित्र हो गया, मूत्र से उसकी आत्मा में अशुचिता के कीटाणु मर गये ।" [20]

इतना सब कुछ होने पर भी शिलिया मातादीन के घर ही रहना चाहती थी, किन्तु मातादीन उसे अपनाना नहीं चाहता । अतः शिलिया को होरी के घर में शरण मिलती है ।

मातादीन को धार्मिक संस्कारों द्वारा पुनः ब्राह्मण तो बनाया गया परन्तु उसकी आत्मा इस शुद्धीकरण से संतुष्ठ नहीं थी । उसके

भीतर रूढ़िवादी समाज, धर्म तथा मानवधर्म के बीच में निरंतर द्वन्द्व चलता रहा और अंततोगत्वा मानवधर्म की विजय हुई । मातादीन रूढिवादी धर्म का परित्याग कर सिलिया को अंगीकृत कर लेता है , इतना ही नहीं अपितु तहेदिल से एकरार करता है —" मैं ब्राह्मण नहीं चमार ही रहना चाहता हूँ । जो अपना धर्म पाले वही ब्राह्मण है । जो धर्म से मुंह मोड़े वही चमार है ।" 21

प्रेमचन्द एक क्रान्तिद्रष्टा लेखक हैं उनकी दूरदेशी सूझबूझ ने बहुत पहले इसे भांप लिया था कि जब तक निम्न जातियों और सवर्णों में शादी-ब्याह के सम्बन्ध स्थापित नहीं हो जाते तब तक समाज में उनको समुचित ढंग से प्रतिष्ठित नहीं किया जा सकता । अतः मातादीन और सिलिया के सम्बन्धों के द्वारा उन्होंने ऐसे वैवाहिक सम्बन्धों को आलेखित करने का साहस दिखाया है । बाद में "~~जल~~ जल टूटता हुआ" में डॉ० रामदरस मिश्र ने कुंज ठाकुर और बदमी चमारिन के ऐसे सम्बन्धों पर स्वीकृति की मुहर लगायी है परन्तु यह ध्यान रहे कि गोदान सन् 1936 की रचना है जब कि "जल टूटता हुआ" स्वातंत्र्योत्तर काल की है ।

मातादीन अपना जनेऊ उतार कर गंगा में फेंक देता है और पक्का किसान बन जाता है उसमें हर दृष्टि से परिवर्तन आता है सिलिया के साथ उसके जो स्वार्थमय और अन्यायपूर्ण जो पहले सम्बन्ध थे उसके लिए वह क्षमायाचना भी करता है और पश्चाताप की आग में जलता भी है । सिलिया जब मातादीन के पुत्र को जन्म देती है तब तो सिलिया का घर उसके लिए मंदिर बन जाता है । यहां पर प्रेमचन्द ने मातादीन का जो हृदय परिवर्तन बताया है उसमें गांधीवाद का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । समाज में दृढ़मूल गैरबराबरी को दूर करने के लिए ऐसे वैवाहिक सम्बन्धों का होना आवश्यक है परन्तु ~~प्रेमचन्द~~ प्रेमचन्द ने जो समाधान प्रस्तुत किया है वह तत्कालीन समाज को देखते हुए सामाजिक न होकर व्यक्तिगत समाधान है । डॉ० कुंवरपाल सिंह इस सम्बन्ध में कहते हैं कि सिलिया से शादी

करने पर मातादीन ब्राह्मण नहीं रह जाता वह ब्राह्मणत्व को तिलांजलि दे देता है । वह स्वयं चमार हो जाता है लेकिन सिलिया को ब्राह्मण वर्ग में स्थान दिलाने में असमर्थ रहता है । [22]

इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में प्रेमचन्द ने सिलिया की पात्र - परिकल्पना द्वारा तथा सिलिया - मातादीन के सम्बन्धों के द्वारा दलित वर्ग के सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, दैहिक और भावनात्मक शोषण की दोहरी नैतिकता को अभिव्यक्ति प्रदान की है । मातादीन सिलिया का दैहिक शोषण ही नहीं करता उसका आर्थिक और शारीरिक शोषण भी करता है । जब आवश्यकता नहीं रहती तब यह उसे छोड़ देता है । इन सम्बन्धों के कारण जब वह भ्रष्ट हो जाता है तब ब्राह्मण समाज द्वारा उसका प्रायश्चित कराके उसे पुनः शुद्ध कर दिया जाता है परन्तु इस शुद्धिकरण के बाद ही उसे आत्मज्ञान होता है और धार्मिक अनुष्ठानों से जुड़े इस ढकोसलों पर से उसका विश्वास उठ जाता है । अन्ततः मानवीय सम्बन्धों को वह स्वीकार करता है । मानो टैगोर का वह कथन सत्य प्रमाणित होता है —" सबारी अपर मानूष सत्य" । अतः वह सिलिया को तहेदिल से अंगीकृत कर लेता है । सिलिया मातादीन के पात्रों की इस परिणति के द्वारा लेखक ने जाति-पांति से जुड़े धार्मिक अन्ध विश्वास एवं पण्डा-पुरोहितवाद की व्यर्थता को सिद्ध किया है । इससे लेखक की प्रगतिवादी दृष्टि प्रतिबिम्बित होती है । दलित चेतना की दृष्टि से विचार किया जाय तो प्रेमचन्द द्वारा प्रणीत गोदान उपन्यास एक उल्लेखनीय उपन्यास है । क्योंकि उसमें प्रेमचन्द ने सिलिया और मातादीन के माध्यम से कदाचित पहली बार सवर्ण-अवर्ण सम्बन्धों को स्थापित किया है ।

§4§ प्रेमचन्द के अन्य उपन्यास :--

उक्त उपन्यासों के अतिरिक्त "प्रेमाश्रम", "रंगभूमि" तथा "गबन" में कहीं कहीं दलित वर्ग की समस्याओं का निरूपण प्रेमचन्द जी ने किया है । प्रेमचन्द जी के साहित्य में दलित वर्ग के शोषण को दृष्टिगत किया जा सकता है, उसका एक कारण यह भी है कि प्रेमचन्द एक दृष्टि - सम्पन्न प्रगतिवादी साहित्यकार थे और उन्होंने अपने साहित्य में हर प्रकार के शोषण का विरोध किया है । नारी, किसान, मजदूर के शोषण के साथ साथ दलित शोषण को भी इसीलिए उन्होंने बार-बार उठाया है । इस वर्ग का जो शोषण होता है उसमें "बेगार" भी एक प्रकार का शोषण हुआ करता था । "बेगार" उसे कहते हैं जिसमें किसी काम के लिए पारिश्रमिक नहीं दिया जाता । पुरानी सामन्ती व्यवस्था में दलित वर्ग के लोगों को जूंठन और उतरण तो मिल जाती थी परन्तु उसके लिए उनके कन्धों पर बेगार का जुआ हमेशा रहता था । सामन्ती शासन में जब हाकिमों के दौरे होते थे तब उनके घोडों के लिए घास छीलकर लाना पड़ता था । प्रेमाश्रम उपन्यासमें एक चपरासी"भरत "नामक एक व्यक्ति को जब घास छीलने के लिए पकड लेता है तब वह कहता है कि -"घास चमार छीलते हैं । यह मारा काम नहीं है ।" [23]

सरकारी बेगार में पारिश्रमिक मांगना एक प्रकार का अपराध माना जाता था । यह काम उन्हें बेगार में ही करना पड़ता था । प्र प्रस्तुत उपन्यास में एक स्थान पर तहसीलदार के दौरे के समय चमारों द्वारा जब घास छीलने की मजदूरी मांगी जाती है तब तहसीलदार नाजीर को आदेश देता है -" आप मेरा मुंह क्या देख रहे हैं ? चपरासियों से कहिए, इन चमारों की अच्छी खबर लें, यही इनकी मजदूरी है । [24] नाजीर के कहने पर चपरासी चमारों को घेरना शुरू कर देते हैं, कॉन्स्टेबल भी बंदूकों के कुन्दों से उनकी बुरी तरह से खबर लेते हैं ।

इस प्रकार प्रेमाश्रम उपन्यास में दलित शोषण का चित्रण बेगारी के रूप में हुआ है । बेगार प्रथा सामन्ती शासन व्यवस्था की क्रूरतम अमानवीय एवं अन्याय परक व्यवस्था थी । इसमें चमारों से कड़े से कड़ा शारीरिक काम लिया जाता था और बदले में उन्हें कुछ भी नहीं दिया जाता था । यदि किसी के कहने पर वे बेचारे मजदूरी मांगने की हिम्मत या हिमाकत करते तो उनकी बुरी तरह से पिटाई होती थी । जगदीश - चन्द के उपन्यास "धरती धन न अपना " में भी हम इस "बेगार" समस्या के द्वारा हो रहे दलित समाज के शोषण को देख सकते हैं ।

"रंगभूमि" प्रेमचन्द का एक महाकाव्यात्मक वृहदाकर उपन्यास है, जो मुख्यतया गांधीवादी विचारधारा से अनुप्राणित है । रंगभूमि उपन्यास का नायक सूरदास जाति से चमार है । इस उपन्यास में दलित वर्ग के किसी व्यक्ति को कदाचित पहलीबार नायकत्व प्राप्त हुआ है परन्तु सूरदास के माध्यम से लेखक ने दलित वर्ग की व्यथा कथा को न कहकर उसे सम्पूर्ण पराजित भारतीय जनता का प्रतिनिधि बना दिया गया है । सूरदास जन्मांध है, वह आजीविका के लिए कास्तकारी भी नहीं करता तथा अविवाहित है इसलिए पारिवारिक जिम्मेदारियों से भी एक प्रकार से मुक्त जैसा है । पूंजीपति जॉन सेवक अपने सिगरेट के कारखाने के लिए सूरदास की खाली पड़ी हुई जमीन को खरीदना चाहता है । यह जमीन सूरदास के किसी काम की नहीं है बल्कि समस्त पांडेपुर गांव के लोग उसका अपने अपने ढंग से उपयोग करते हैं । सूरदास के स्थान पर कोई दूसरा स्वार्थी व्यक्ति होता तो जमीन बेंचकर चैन की बंशी बजाता परन्तु सूरदास सार्वजनिक उपयोग में आने वाली इस जमीन को बेचना नहीं चाहता और जॉन सेवक महेन्द्र प्रताप सिंह जैसे पोलीटीशियन तथा क्लार्क जैसे हाकिमों से मिलकर कानूनी हथकन्डों के द्वारा जबरजस्ती इस जमीन को हड़पना चाहता है तब उसकी रक्षा के लिए वह ताल ठोंककर खड़ा हो जाता है , संघर्ष करता है और उसी संघर्ष में अंततोगत्वा शहीद हो जाता है । दलित जाति के व्यक्ति में इस प्रकार की उदात्त भावनाओं के निरूपण की

भावना द्वारा प्रेमचन्द कदाचित यह प्रमाणित करना चाहते हैं कि इन तथाकथित निम्न जातियों में भी सूरदास जैसे लोग हो सकते हैं जिनकी आत्मा बुलंदियों पर स्थित है और जो व्यक्तिगत स्वार्थ के संकुचित दायरों से काफी दूर हैं ।

"रंगभूमि" के सूरदास के सम्बन्ध में डॉ० विजेन्द्र नारायण सिंह कहते हैं —" सूरदास का नायकत्व एक विशेष महत्व रखता है । वह किसानी नहीं करता इसलिए निर्भीक है । वह जन्मांध भी है इसलिए सब बेड़ियों से मुक्त है । वह अपनी जीविका के लिए औरों की तरह खेती पर आश्रित नहीं है । वह भीख मांगता है, इसलिए मुक्त भी है.... रंगभूमि का सूरदास डेढ़ पसली का आदमी है लेकिन जब तन के खड़ा होता है तब ताकतवर पूंजीपति और सामन्त का कलेजा दहल जाता है ।" [25] अंग्रेज राज्य का प्रतिनिधि क्लार्क भी सूरदास से डरता है । वह राजा महेन्द्र प्रतापसिंह या विनय सिंह जैसे लोगों से नहीं डरता जो देशभक्ति का नाटक करते हैं, क्योंकि यह भलीभांति जानता है कि वे लोग अंग्रेजी राज्य का बाल भी बांका नहीं कर सकते । उसे खतरा सूरदास जैसे लोगों से है जो सच्चे हैं और सच्चाई के लिए लड़ने में जिनके इरादे चट्टान की तरह मजबूत हैं । [26] एक स्थान पर क्लार्क राजा महेन्द्र प्रताप सिंह से कहता है –" हमें आप जैसे मनुष्यों से भय नहीं है, भय ऐसे मनुष्यों से है जो जनता के हृदय पर शासन करते हैं ।" [27] सूरदास प्रेमचन्द के पात्रों में है जो जिन्दगी को एक संघर्ष और साथ ही साथ एक खेल भी समझता है । हार भी गये तो क्या ? जीत भी गये तो क्या ? खिलाडियों का एक मात्र कर्तव्य है खेलना । अतः पाण्डेय पुर गांव के लिए लड़ते – सत्याग्रह करते हुए वह पुलिस की गोली का शिकार होकर दम तोड़ देता है तब भी कहता है —" हम हारे तो क्या, मैदान से भागे तो नहीं , रोये तो नहीं , धांधली तो नहीं की । फिर खेलेंगे, जरा दम ले लेने दो, हार–हार कर तुम ही से खेलना सीखेंगे और एक–न–एक दिन हमारी जीत होगी, अवश्य होगी ।" [28]

रंगभूमि और कर्मभूमि में प्रेमचन्द के पात्र लड़ते हैं और लड़ने वाले सभी पात्र अछूत हैं । जो अछूत नहीं हैं, किसान हैं वे लड़ते नहीं केवल भोगते हैं, शिकार होते हैं । होरी केवल भोगता है, दुःख उठाता है लड़ता नहीं है । झुनिया को घर में रखने के लिए बिरादरी वाले उसको दण्ड करते हैं, वह चुपचाप उस दण्ड को स्वीकार कर लेता है । उसी को वह "मर्जादा" कहता है । अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए वह व्यवस्था से अपने को बांध कर रखता है । होरी इस व्यवस्था का समर्थक और रक्षक है जो व्यवस्था उसे जिन्दा चबा जाती है ।

पाण्डेपुर में सूरदास की प्रतिमा स्थापित किये जाने पर जो प्रीतिभोज होता है उसमें सवर्ण और अछूत एक ही पंगत में बैठकर भोजन करते हैं । सूरदास की यह बड़ी नैतिक विजय है । उसकी मृत्यु के बाद बनाया गया स्मारक इस बात का परिचायक है कि भारतीय मनोवृत्ति मरणोपरांत आदान-प्रदान में काफी उदार हो जाती है । जो उपहासात्मक लगती है ।

इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में प्रेमचन्द ने दलित वर्ग की दीगर समस्याओं को न लेते हुए उस वर्ग के एक चरित्र को उदात्तता के साथ स्थापित किया है ।

जिस प्रकार रंगभूमि उपन्यास में सूरदास का चरित्र मिलता है उसी प्रकार "गबन" उपन्यास में देवीदीन खटिक का चरित्र मिलता है । देवीदीन दलित है । दलित वर्ग में ऐसे ऊँचे आदर्शों वाले और भावनाशील व्यक्ति हो सकते हैं यही प्रेमचन्द बताना चाहते हैं । इस उपन्यास का नायक रमानाथ मिथ्याडंबर के कारण "गबन" करके जब कलकत्ता भाग जाता है, तब रेल यात्रा में उसकी भेंट गोरे खटिक देवीदीन से हो जाती है । देवीदीन रमानाथ को आश्रय देता है । उसकी शब्जी की दुकान जिस पर प्रायः उसकी बुढ़िया पत्नी बैठती है । खटिक दंपति का स्नेह देखकर रमानाथ उसे माता-पिता के समकक्ष मानने लगता है और घर से भागने का सारा हाल बता देता है । रमानाथ को पता नहीं था कि जालपा ने

गबन की रकम दूसरे ही दिन कार्यालय में जमा करवा दी थी और अब उस पर "गबन" का कोई आरोप नहीं था ।

बहुत सचेत रहने पर भी एक दिन पुलिस उसे सन्देह में गिरफ्तार कर लेती है । वह पुलिस के सामने अपना अपराध स्वीकार कर लेता है, दूसरी तरफ पुलिस इलाहाबाद की पुलिस से मालुम करती है कि उस पर ऐसा कोई आरोप नहीं है फिर भी पुलिस उसे एक डकैती प्रकरण की झूठी गवाही में फंसा देती है ।

रमानाथ के गिरफ्तार होने पर देवीदीन का भावनाशील हृदय उसे किसी भी मूल्य पर छुड़ाने को तैयार हो जाता है। वे अपने दृढ़ निश्चय को दोहराते हुए कहते हैं -" कैसी बातें करते हो भैया ? जब रूपयों पर बन आई तो देवीदीन पीछे हटने वाला नहीं है ? इतने रूपये तो एक-एक दिन जुए में हार-जीत गया । अभी बेंच दू तो दस हजार की मिल्कत है क्या शिर पर लाद कर ले जाऊंगा ?" [29]

बहुत प्रयत्न करने पर भी जब रमानाथ नहीं छूटता है तब देवीदीन बहुत दुःखी होता है । रमानाथ को ढूंढते हुए उसकी पत्नी जालपा जब आती है तब देवीदीन उसे पुत्रवधू सा स्नेह देता है ।

देवीदीन ने दुनिया को देखा परखा था अतः जीवन और जगत के प्रति उसकी दृष्टि में एक प्रकार की परिपक्वता के दर्शन होते हैं । अपने इस गंभीर व्यक्तित्व के कारण वह रमानाथ के व्यक्तित्व को विघटन और टूटन से बचाता है । रमानाथ हमेशा पुलिस से डरता रहता है । उस सन्दर्भ में देवीदीन कहते हैं -" सिपाही क्या पकड लेगा, दिल्लगी है । मुंह से कहो, मैं प्रयागराज के थाने ले जाकर खड़ा कर दूं । अगर कोई तिरछी आंखों से देख ले तो मूंछ मुड़ा लूं । ऐसी बात है भला । सैकड़ों खूनियों को जानता हूं जो यहीं कलकत्ते में रहते हैं, पुलिस उन्हें जानती है फिर भी उनका कुछ नहीं कर सकती । रूपये में बड़ बल होता है भैया ।" [30]

देवीदीन की राष्ट्रीय भावना भी शराहनीय है स्वाधीनता आन्दोलन में वह अपने दो पुत्रों का बलिदान दे चुके हैं । वे स्वदेशी आन्दोलन के भी पक्के सूत्रधार हैं और नहीं चाहते कि अपने देश का रूपया विदेशों में जाय और हमारे यहां के गरीब मजदूर बेरोजगार होकर भूखों मरें । दिखावे से उन्हें घृणा है । एक स्थान पर वे कहते हैं - "इन बड़े-बड़े के किये कुछ न होगा इन्हें बस रोना आता है । छोकरियों की भांति बिसुरने के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता । बड़े-बड़े देशभक्तों को बिना विलायती शराब के चैन नहीं आता । इनके घर में जाकर देखिये सब लोग भोग विलास में अन्धे हो रहे हैं । और उस पर दावा यह है कि देश का उद्धार करेंगे ।" [31]

उपन्यास के अन्त में हम देखते हैं कि देवीदीन नगरीय संस्कृति का परित्याग कर ग्राम्य जीवन की ओर उन्मुख होते हैं । लेखक के ही शब्दों में देखें -" तीन साल गुजर गये हैं, देवीदीन ने जमीन ली, बाग लगाया, खेती जमायी, गाय-भैंसें खरीदी और कर्मयोग में अविरत उद्योग में सुख संतोष और शांति का अनुभव कर रहा है । उसके मुख पर अब वह जरदी नहीं , वह झुरिया नहीं है बल्कि एक नयी स्फूर्ति , एक नयी कान्ति झलक रही है ।" [32]

देवीदीन एक दलित चरित्र है और उसकी यह परिणति प्रेमचन्द की विचारधारा को निरूपित करती है । दलित वर्ग में ऐसे आदर्श और उदात्त चरित्रों की सृष्टि के द्वारा वे मानो समाज के सामने एक मिसाल प्रस्तुत करना चाहते हैं कि इस वर्ग में भी ऐसे साधु पुरूष हो सकते हैं । देवीदीन जैसे आदर्श और उदात्त चरित्र की दृष्टि से "गबन" को एक महत्वपूर्ण कृति माना जा सकता है । इस उपन्यास का आकलन इस दृष्टि से बहुत कम हुआ है ।

(5) अलका :--

इस युग में प्रेमचन्द की विचारधारा का प्रभाव सभी विचारशील

एवं प्रगतिशील लेखकों में देखा जा सकता है । सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" द्वारा प्रणीत अलका उपन्यास इसका प्रमाण है । इस उपन्यास में लेखक ने अलका नामक एक लड़की की कथा-व्यथा को परिष्कृत किया है जिसके माता-पिता असमय काल कवलित हो गये हैं । माता-पिता की छाया न रहने पर अलका के जीवन पर संकटों के बादल गहराने लगते हैं । अलका इन सब संकटों का सामना धैर्य से करते हुए अपने शील और सतीत्व की रक्षा करती है । अलका की इस कथा के समानान्तर लेखक ने भोला चमार व मन्ना पासी जैसे पात्रों की अवतारणा की है । यह पात्र बड़ी सहजता से उपन्यास के अंग बन गये हैं । जहां गांव के उच्च वर्ण के लोग अलका की अनाथ अवस्था से लाभ उठाना चाहते हैं वहां भोला चमार और मन्ना पासी उसकी सहायता करते हैं । प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने जमींदारों के अत्याचारों का भी वर्णन किया है । जमींदारों के अत्याचारों का भी पर्दाफास किया है । जमींदारों तथा अफसरों की मिलीभगत दरिद्र व निम्न जाति वर्ग के लोगों का किस प्रकार शोषण करती है उसका पर्दाफास भी प्रस्तुत उपन्यास में हुआ है ।

§6§ निरूपमा :--

यद्यपि इस उपन्यास का दृष्टिकोण स्वच्छंदतावादी है और उस पर निराला जी के व्यक्तित्व का प्रभाव परिलक्षित होता है तथा मुख्यतया उसमें नायिका निरूपमा और नायक कुमार के एकनिष्ट प्रेम का ही चित्रण हुआ है तथापि उसमें अछूत समस्या को एक-दूसरे ढंग से प्रस्तुत किया गया है । इसमें जहां लेखक एकनिष्ठ प्रेम की गंभीरता का चित्रण करते हैं वहां दूसरी तरफ ग्रामीण जनता के अंधविश्वासों , सामाजिक रूढ़ियों और भ्रष्टाचारों की ओर भी पाठकों का ध्यान आकर्षित करते हैं । ग्रामीण जीवन का बड़ा ही विश्वसनीय चित्र यहां उभरता है । उपन्यास की कथावस्तु सरल और प्रभावमयी है ।

इस उपन्यास का नायक कुमार एक उच्च वर्ण का नवयुवक है ।

वह प्रगतिशील विचारों में विश्वास करता है । लंदन जाकर वह पी-एच. डी. की उपाधि प्राप्त करता है लेकिन भारत लौटने पर उसे कोई अच्छी नौकरी नहीं मिलती । डॉ० खुराना और नारलीकर जैसे विश्वविख्यात Scientist के साथ भी भारत सरकार का यही रवैया रहा है । परंतु यह उपन्यास 1936 का है अतः निराला की दूरदेशी दृष्टि को श्लाघनीय कहा जा सकता है । ढंग की नौकरी न मिलने पर डॉ. कुमार समाज पर व्यंग्य करने के लिए चमार का व्यवसाय अपना लेते हैं । हमारे यहां वर्ण व्यवस्था का मूल आधार पैसा है या यों कह सकते हैं कि प्रत्येक वर्ण को कुछ व्यवसायों से सम्बद्ध कर दिया गया है । अतः निम्न जातिवालों का कोई कार्य कोई उच्च वर्ण का हिन्दू नहीं करता है, इधर शिक्षित बेरोजगारी के कारण कुछ उच्च वर्ण के लोग स्कूलों तथा कालेजों में चपराशी (Peon) का काम करने लगे हैं परन्तु इस बात का बराबर ध्यान रहता है कि उन लोगों को चपराशी के पद पर रहते हुए भी उनकी जाति की गरिमा के अनु-रूप कार्य अपूर्त किये जाते हैं । फलतः जब कोई उच्च वर्ण का व्यक्ति निम्न वर्ण की जाति का व्यवसाय करने लगता है तो लोग इसे हेय की दृष्टि से देखते हैं और उसका सामाजिक बहिष्कार भी करते हैं । हम लाख शिक्षित होने का दावा करें, लाख प्रगतिशील होने का दावा करें, लाख जातिवाद को मिटा देने का दावा करें परन्तु जातिवादी संकीर्णता के कीड़े हमारे मनोमस्तिष्क में आज भी कुलबुलाते हैं । अभी संप्रति राजस्थान में जयपुर नरेश भवानी सिंह का एक प्रकार से सामाजिक और राजनीतिक बहिष्कार हुआ क्योंकि उनकी सुशिक्षित पुत्री ने एक निम्न जाति के सुशिक्षित योग्य व्यक्ति से विवाह कर लिया था और भवानी सिंह ने अपनी पुत्री के टुकड़े-टुकड़े कर देने के बदले, या उस युवक की हत्या करवा देने के बदले या उनको बहिष्कृत एवं तिरस्कृत करने के बदले नवदंपति को आशिर्वाद दिये थे ।[33] जब जयपुर नरेश के साथ ऐसा हो सकता है तो डॉ० कुमार के साथ क्या कुछ नहीं हो सकता ? गांव वाले कुमार के साथ उसकी मां और

भाई का भी बहिष्कार कर देते हैं । आधुनिक शिक्षा प्राप्त लखनऊ जैसे शहर के लोग भी डॉ. कुमार को धिक्कार की नजरों से देखते हैं । डॉ. कुमार लखनऊ में एक होटल में रहने जाते हैं तो वहां के बाबू लोग उन्हें होटल में स्थान नहीं देते और उभरती संकीर्णता और पिछड़ेपन को छिपाने के लिए कहते हैं —" यह इंग्लिस्तान नहीं है । जैसे देश वैसे भेष यहां तो इस तरह चमारों में ही रहा जा सकता है ।" [34] लखनऊ का वैष्णव भोजनालय भी वर्ण व्यवस्था का पालन में किसी से कम नहीं है फिर भले ही प्रकटतः "जाति पांति पूछे नहिं कोई, हरि को भजै सो हरि को - होई *" का गुण-गान दिनरात करते रहते हैं ।"

इस उपन्यास में कई स्थल बड़े मर्मस्पर्शी बन पड़े हैं , यथा — निरूपमा और कुमार का परिचय गांव में कुमार की माता सावित्री देवी के साथ किया गया घोर अन्याय, ब्रह्मभोजन के दिन बालक रामचन्द्र की दयनीय स्थिति, निरूपमा एवं सावित्री देवी की प्रथम भाटोरी । इस उपन्यास के सभी पात्र बड़े सजीव हैं उनमें भी निरूपमा, कुमार, योगेश , सुरेश आदि का चरित्र-चित्रण बड़ी सफलता के साथ हुआ है । नायिका निरूपमा की आत्मवेदना तथा उनके मानसिक द्वन्द्व को उकेरने में लेखक को सफलता प्राप्त हुई है ।

§7§ कुल्ली भाट :—

कुल्ली भाट उपन्यास में निराला ने अछूतोद्धार और सांप्रदायिकता की प्रवृत्तियों को यथार्थवादी दृष्टिकोण से उकेरा है, इतना ही नहीं इनके नाम पर चल रहे पाखंडों का पर्दाफास भी किया है । तथा-कथित उच्चवर्ग के बड़े लोग बतौर फैशन समाज सुधार और अछूतोद्धार की डींगें तो बहुत हांकते हैं , यश कमाने के लिए परन्तु मौके पर आंखें बन्द कर लेते हैं । कुल्लीभाट के चरित्र नायक के रूप में लेखक ने एक ऐसे गतिशील चरित्र की रचना की है जो आरंभ में तो समाज की ह्रासोन्मुखी शक्तियों का प्रतीक है और अन्त में जाकर प्रगतिशील शक्तियों का

नियामक बन जाता है । [35] निराला जी की इस कृति में हमें उपन्यास, आत्मकथा, जीवन-चरित्र , संस्मरण, रेखाचित्र आदि का साहित्य - स्वरूपों का मिला-जुला रूप मिलता है ।

निराला जी एक क्रान्तिकारी साहित्यकार थे फलतः उनके साहित्य में हमें ऐसे कई चरित्र मिलते हैं जो क्रांति की मिसाल को लेकर चलते हैं । ऐसे चरित्रों के निर्माण द्वारा वे समाज में क्रांति का शंख फूक देना चाहते थे । कुल्ली एक ऐसा ही चरित्र है । वह अछूत समाज के लिए पाठशाला चलाता है । कुल्ली का जीवन प्रगतिशील जीवन-मूल्यों के प्रति समर्पित व्यक्ति का जीवन बन जाता है । वह एक मुस्लिम महिला से विवाह करता है । फलतः आजीवन उसे सामाजिक बहिष्कार और दु दुराग्रहों का शिकार होना पड़ता है । अछूतोद्धार के कार्यों में भी उसे किसी प्रकार का सहयोग तो नहीं ही मिलता है, सरकार की ओर से भी कोई सहयोग नहीं मिलता है । केवल अपने बूते पर ही वे यह कार्य करता है । एक स्थान पर कुल्ली लेखक को बताता है -" अछूत पाठशाला खोली है, तीस-चालीस लड़के आते हैं , तो भी धोबी, भंगी, चमार , डोम और पासियों के । पढ़ाता हूँ लेकिन बड़े आदमी कहे जाने वाले लोग मदद नहीं करते । यहां के चेयरमैन साहब के पास गया । वह जबान से नहीं बोले हालांकि शहर के आदमी हैं ।" [36]

बल्कि अछूत पाठशाला खोलने के बाद कुल्ली के प्रति लोगों की जो थोड़ी-बहुत सहानुभूति होती है वह भी खत्म हो जाती है, इससे प्रतीत होता है कि अछूत लोगों को हिन्दू समाज हिकारत की दृष्टि से देखता है ।

गांव के बिदा खटिक की दुल्हन जब मर रही थी तो उसकी सहायता हेतु कोई नहीं आता है, जबकि कुल्ली जी-जान से उसकी सेवा करता है । कुल्ली की सेवाभावना और प्रगतिवादी दृष्टि के कारण वह निराला की निगाह में काफी ऊँचे उठ जाता है । संसार के प्रति कुल्ली और निराला का अनुभव एक जैसा ही है --" संसार में सांस लेने का भी

सुविधा नहीं, यहां बड़ी निष्ठुरता है, यहां निश्छल प्राणों पर ही लोग प्रहार करते हैं, केवल स्वार्थ है यहां, वह चाहे जन सेवा हो या देश सेवा ।" 37

जब कुल्ली की मृत्यु होती है तो गृहशांति हेतु हवन के लिए कोई पंडित तैयार नहीं होता क्योंकि कुल्ली समाज द्वारा बहिष्कृत था, परन्तु ससुराल वालों के विरोध के बावजूद निराला यह कार्य स्वयं करते हैं ।

इस प्रकार इस उपन्यास में लेखक ने यह प्रतिपादित किया है कि कुल्ली जैसे समर्पित भाव से सेवाकार्य करने वाले, अछूतोद्धार की प्रवृत्ति को चलाने वाले और मुस्लिम स्त्री से विवाह करने वाले व्यक्ति की समाज में कैसी बुरी दशा होती है । ऐसे आचार विचार में एक व्यक्ति को तो समाज में यश और सम्मान मिलना चाहिए परन्तु कुल्ली को जो सम्मान मिलता है उसका चित्रण लेखक ने व्यंग्यात्मक शैली में किया है । इससे यह भी ध्वनित होता है कि कमोबेस रूप में सच्चे समाज सेवक की स्थिति आज भी कुल्ली भाट जैसी ही है ।

(8) अंतिम आकांक्षा :—

यह मैथिलीशरण गुप्त के अनुज सियारामशरण गुप्त का उपन्यास है । जिसका प्रकाशन सन् 1934 में हुआ था । प्रस्तुत उपन्यास में रामलाल नामक एक निर्धन तथा दलित वर्ग के चरित्र के माध्यम से लेखक ने सामाजिक विषमता तथा भ्रष्टाचार आदि का यथार्थ चित्रण किया है । लेखकीय संवेदना रामलाल के साथ है । रामलाल एक घरेलू नौकर है । ऐसे विधर्म निम्नवर्गीय एवं उपेक्षित व्यक्ति को अपनी कथा का नायक बनाकर गुप्त जी ने यह संकेत दिया है कि साहिती व्यक्ति का नहीं, अपितु उसके भीतर विराजमान मानव का भावात्मक इतिहास है। साधारण से साधारण स्थिति के प्राणी में भी महत्ता के दर्शन किये जा सकते हैं । अभी तक के साहित्यकारों में यह कमी थी कि इस प्रकार के साधारण

पात्र उनकी कल्पना में आते ही नहीं थे । [38]

रामलाल के जीवन की दुःखद गाथा का आरम्भ उस घटना से होता है, जिसमें वह डाकुओं के आक्रमण का बड़े साहस के साथ सामना करता है । इसमें एक डाकू को वह मृत्यु के घाट भी उतारह देता है । उसके इस साहस और पराक्रम के कारण अनेकों लोगों के प्राण बचते हैं । परन्तु बदले में रामलाल को क्या मिलता है ? घृणा और तिरस्कार । हमारा रूढिवादी, जातिवादी, अत्याचारी समाज, उसके पुरूषार्थ का बदला चुकाने की अपेक्षा उसे हिकारत भरी नजरों से देखता है । उसे इस कार्य के लिए प्रायश्चित करना पड़ता है क्योंकि जो डाकू मारा गया था वह उच्च वर्ण का था । यहां भारतीय समाज में व्याप्त वर्ण-व्यवस्था पर [illegible] आधारित जातिवादी जहर को विश्लेषित किया गया है । महात्मा ज्योतिराव फूले भारतीय समाज की इस जातिवादी दृष्टि से दुःखी थे । उनका विश्वास था कि जातिभेद तथा व्यक्तिगत के गर्हित व्यवहार ने ही भारत को गुलाम बनाया है । ज्योतिराव ब्रिटिश शासन को इसलिए बुरा नहीं मानते थे कि कम से कम ब्रिटिश शासन में शूद्रों को मनुष्य माना जाने लगा था । [39]

गुप्त जी का प्रस्तुत उपन्यास आज के संदर्भ में भी प्रासंगिक है । क्योंकि आजादी के इतने वर्षों बाद भी हमारी सामाजिक विषमता का यह कलंक दूर नहीं हुआ है । अभी हाल ही में प्राप्त एक घटना के अनुसार हैदराबाद हाईकोर्ट के एक शूद्र जज का जब तबादला हुआ और उनके स्थान पर जब दूसरा सवर्ण जज आया तो उन्होंने उस चेम्बर को गंगाजल द्वारा शुद्ध करवाया । [40]

मानव मात्र मौलिक रूप में समान है इसमें छुताछूत का विचार नहीं होना चाहिए । सबके साथ अच्छा व्यवहार करना चाहिए । जिसकी जैसी शक्ति हो वह उस क्षेत्र में विकास करता है । इस उत्तम विचार का वर्ण-व्यवस्था में छेद उडा दिया गया है । इस संदर्भ में ज्योतिराव फूले के निम्नलिखित विचार दृष्टव्य हैं—" वर्णव्यवस्था कभी केवल काम का

बकवास रही होगी और सभी मानव में समानता रही होगी, परन्तु जो अनुभव का विषय है वह यह है कि इसने भारतीय समाज को तोड़कर रख दिया है। ब्राह्मण-पुरोहितों ने क्षत्रियों से कहा कि तुम केवल हमसे छोटे हो, किन्तु वैश्य और शूद्र से बड़े हो। हम तुम्हारा उद्धार करेंगे, तुम्हारे शासन की भी रक्षा करेंगे। क्षत्रियों ने वैश्यों से कहा कि तुम शूद्र तथा अति शूद्रों से बड़े हो और शूद्रों से कहा कि तुम अतिशूद्रों से बड़े हो। उन्होंने अतिशूद्रों से कहा कि तुम चिन्ता क्यों करते हो। ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा वैश्यों को नानाविधि-निषेध की झंझट है, तुम्हें कुछ नहीं है। तुम जैसा चाहो रहो, बस, अन्य तीन वर्णों की सेवा करके मुक्त हो जाओगे। [41] इस प्रकार की भेद नीति ने समाज को तोड़ा।

प्रस्तुत उपन्यास के नायक रामलाल के साथ लगातार दुर्व्यवहार ही होता रहता है। क्योंकि वह दलित वर्ग का है। जिन कार्यों के लिए सराहना मिलनी चाहिए वहां पर भी लोग उसकी आलोचना करते हैं। इससे यह प्रतीत होता है कि उच्चवर्गीय लोग निम्न वर्ग के अच्छे लोगों की भी साधारणतया उपेक्षा करते हैं। इस तथ्य का अन्तर्साक्ष्य उपन्यास में ही उपलब्ध होता है। एक बार वह शहर के लखपति नागरिक बंशीधर के पुत्र को कुंए में डूबने से बचाता है। इस परोपकार के बदले में भी रामलाल को अनादर ही मिलता है। बंशीधर रामलाल के इस परमार्थ का मूल्य एक रूपया लगाते हैं। तब रामलाल की आत्मा कलपते हुए कह उठती है —" मैंने रूपये के लोभ से अपने को कुंए में नहीं धकेला था। रज्जू (बंशीधर का पुत्र) जीता जागता कुंए से निकल आया, इससे अधिक मैं कुछ नहीं चाहता। किसी को कुछ देना ही है तो हरया चमार को दो, जिसे दस-बीस ही रूपये के मूल में व्याज पर ब्याज जोड़कर परसों ही तुमने घरबार से बेदखल कर दिया और जिसके पास अब विष खाने के लिए भी पैसा नहीं है। दस रूपये से उसके घर भर के खाने की अफीम आ जाएगी।" [42]

उपर्युक्त कथन से यह भी प्रमाणित होता है कि उच्चवर्गीय लोग किस प्रकार निम्न वर्ग के दलितों का शोषण करते हैं। दस-बीस रूपये में

बंशीधर हरया चमार के घरबार को लिखवा देता है । यहां बर्बश प्रेमचन्द की "सवासेर गेहूँ" कहानी स्मृति में कौंध जाती है ।

इन घटनाओं से रामलाल बहुत दुःखी होता है । हृदय की पीडा और सामाजिक तिरस्कार से वह दग्ध हो जाता है । फलतः उसमें असंतोष की भावना जगती है । किन्तु वह किसी को हानि नहीं पहुंचाता । लोगों की झूंठी शिकायतों के आधार पर रामलाल को बंदी बना लिया जाता है और उसे अकारण डाकू सिद्ध कर दिया जाता है । परिणाम स्वरूप उसे पांच वर्ष के कठोर कारावास का दण्ड मिलता है । रामलाल की यह अंतिम आकांक्षा थी कि उसे अपने स्वामी के दर्शन हो सके किन्तु जेल में ही न्यूमोनिया से उसका देहांत हो जाता है और इस प्रकार कारावास के उस दण्ड से मुक्त हो जाता है ।

प्रस्तुत उपन्यास के सन्दर्भ में डॉ. मोहनलाल रत्नाकर के निम्न लिखित विचार ध्यातव्य है --" "अंतिम आकांक्षा" में रामलाल का चरित्र ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण है । वह लेखक के असंतोष एवं आक्रोश का प्रतिनिधित्व करता है । वह लेखक की ही भांति गांधीवादी है । समाज उस पर अत्याचार करता है, पर उसके प्रति विद्रोह करने की क्षमता उसमें नहीं है । उपन्यासकार गांधीवादी दृष्टिकोण से रूढ़िवादी और अन्यायी समाज का सुधार चाहता है । वह रामलाल के बलिदान से पाषाण हृदयों को बदलने का प्रयास करता है ।" [43]

प्रेमचन्द युगीन दलित चेतना से अनुप्राणित उपन्यासों पर एक विहंगम दृष्टि :-

भारतीय इतिहास इस बात का साक्षी है कि जाति-पाति की समस्या ने क्षय रोग की भांति उसे दुर्बल और जर्जर किया है । उसकी अवनति या राज का कारण भी यही है । यह अछूतपन या अस्पृश्यता का कोढ़ हमारे समाज के अंग पर नासूर की भांति है । देश की आबादी के एक बहुत बड़े भाग को अछूत बनाकर उन्हें समाजिक, राजनीतिक, आर्थिक

और धार्मिक अधिकारों से वंचित कर देना किसी भी सूरत में औचित्य की सीमा के अन्तर्गत नहीं आ सकता । डॉ० बाबा साहब आम्बेडकर ने भारतीय इतिहास तथा समाज की तमाम कमजोरियों के मूल में इसी जाति-पाँति की समस्या को कारणभूत ठहराया है । इस सन्दर्भ में उनके निम्नलिखित विचार उद्धरणीय रहेंगे --" एक ओर शिखों और मुसलमानों के आपसी रहन-सहन का तरीका, उनमें भाईचारे की भावना पैदा करता है । दूसरी ओर हिन्दुओं के आपसी रहन-सहन के तौर-तरीके इस भावना को पैदा होने नहीं देते । शिखों और मुसलमानों में एकता वह सामाजिक तत्व है, जो उन्हें भाई-भाई बनाता है । हिन्दुओं में एकता का ऐसा कोई तत्व नहीं है और कोई भी हिन्दू दूसरे हिन्दू को अपना भाई नहीं मानता ... निःसंदेह यह अन्तर हिन्दुओं की जाति प्रथा के कारण है । जब तक जाति प्रथा रहेगी हिन्दुओं में संगठन नाम की कोई बात नहीं रहेगी । और जब तक उनमें संगठन नहीं होगा, हिन्दू कमजोर और डरपोक रहेंगे ।" [44]

प्रेमचन्द युग के उपन्यासों में जो दलित चेतना आयी है , उसका एक कारण यह भी है कि उस समय भी ऐसी अनेकों घटनाएं हो रही थीं, जिससे देश का समझदार वर्ग और प्रगतिशील लेखक चिंतित थे । बाबा साहब के उपरोक्त ग्रंथ से ही यहां दो उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं --

(1) मध्य भारत की बलाय नामक एक अछूत जाति पर हिन्दुओं द्वारा किये जाने वाले अत्याचारों का जिक्र 4 जनवरी 1928 के टाइम्स आफ इण्डिया के एक समाचार में देखा जा सकता है । वहां के कालोटो , राजपूतों और ब्राह्मणों , जिनमें पटेल और पटवारी भी सामिल हैं, अपने अपने गांव के बलाईयों को सूचित किया है कि यदि वे उनमें रहना चाहते हैं तो उन्हें निम्नलिखित नियमों का अवश्य पालन करना होगा । ....

(क) बलाई लोग सुनहरी गोटेदार किनारी की पगडियां नहीं बांधेंगे ।

(ख) वे रंगीन और फैन्सी किनारी की धोतियां नहीं पहनेंगे ।

(ग) वे किसी हिन्दू की मृत्यु पर मृतक के सम्बन्धियों को चाहे वे कितनी भी दूर क्यों न रहते हों, मरने की सूचना देंगे ।

(घ) सभी हिन्दुओं के विवाहों में बलाय लोग बारात के आगे और विवाह के दौरान बाजा बजाएंगे ।

(च) बलाद स्त्रियां सोने या चांदी के आभूषण नहीं पहनेंगी ।

(छ) बलाद स्त्रियों को हिन्दू स्त्रियों को प्रसव के सभी मामलों में देख - भाल करनी होगी ।

(ज) बलाय लोगों को बिना कोई पारिश्रमिक मागे सेवा करनी होगी , और हिन्दू उसे जो कुछ खुश होकर देंगे, लेना होगा ।

(त) अगर बलाई लोग इन शरतों का पालन करना स्वीकार नहीं करते हैं तो उन्हें गांव को छोड़ना होगा ।

बलाय लोगों ने उसे मानने से इन्कार कर दिया और हिन्दुओं ने उनके विरुद्ध कार्यवाही की । बलायों को गांवों के कुंओं से पानी नहीं भरने दिया गया । उन्हें अपने पशुओं को चराने के लिए नहीं ले जाने दिया गया । बलाय लोगों को हिन्दुओं की भूमि से गुजरने तक की मनाही कर दी गयी । इन अत्याचारों से बाज आकर बलाय लोग अपने बाल-बच्चों सहित अपनी समीपवती रियासतों में जाकर बसने के लिए मजबूर हो गये । हालांकि वहां भी उनकी स्थिति बेहतर नहीं थी ।[45]

(2) एक घटना प्रथम अप्रैल 1936 या उसके आसपास की है । यह घटना जयपुर रियासत के चकवारा गांव की है । चकवारा गांव का एक अछूत व्यक्ति तीर्थयात्रा से लौटा । धार्मिक अनुष्ठान को पूरा करने के लिए उसने अपने गांव के अन्य अछूत भाईयों को भोज दिया । मैजबान की इच्छा थी कि मेहमानों को बहुमूल्य भोजन करवाया जाय और उसमें घी से बने व्यंजन भी परोसें जाय । किन्तु जिस समय अछूत लोग भोजन कर रहे थे तो सैकड़ों की संख्या में हिन्दू वहां लाठियां लेकर दौड़े और भोजन

को खराब कर दिया तथा अछूतों को बुरी तरह पीटा । परोसे गये भोजन को छोड़ मेहमान लोग अपनी जान बचाने भाग पड़े । निःसहाय अछूतों पर ऐसा प्राणघातक आक्रमण क्यों किया गया ? इसका जो कारण बताया गया है, वह यह था कि अछू त मेजबान इतना दुष्ट था कि उसने घी का प्रयोग किया और उसके अछूत मेहमान इतने मूर्ख थे कि वे उसे खा रहे थे ।... उन्हें यह जानना चाहिए था कि वे हिन्दुओं के सन्मान की बराबरी नहीं कर सकते । इसका यह अर्थ है कि किसी अछूत को घी का प्रयोग नहीं करना चाहिए । ऐसा करना हिन्दुओं के प्रति उद्दंडता है ।[46]

इस प्रकार के शोषण और उत्पीडन के कारण वे बेचारे पहले धर्म परिवर्तन के लिए और बाद में स्वतंत्र संगठन स्थापित करके विद्रोह करने के लिए बाध्य हुए । उनकी यह दयनीय स्थिति से ईसाई पादरियों, इस्लाम धर्म प्रचारकों तथा ब्रिटिस साम्राज्य के अधिकारियों ने पूरा-पूरा लाभ उठाने का प्रयास किया । उन्हें अपने इस उद्देश्य में आंशिक सफलता भी प्राप्त हुई ।

प्रेमचन्द युग के दौरान देश में जब सामाजिक और राजनीतिक आन्दोलन जो पकडने लगे तो अछूत वर्ग के कुछ नेताओं ने भी अपने अपने ढंग से अछूत समस्या को सुलझाने के लिए कार्यरत हुए । अछूत वर्ग के नेताओं को हम दो श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं । प्रथम प्रकार के नेता सवर्ण हिन्दुओं से अछूत वर्ग को पृथक करके ब्रिटिस साम्राज्य की सहायता से उसे एक स्वतंत्र अलग ईकाई के रूप में घोषित करना चाहते थे । दूसरे प्रकार के नेता स्वतंत्रता संग्राम के साथ-साथ अछूतोद्धार की समस्या को भी व्यापक स्तर पर सुलझाना चाहते थे । वे अछूतों को भारतीय समाज का एक अभिन्न अंग मानते थे और उन्हें समानाधिकार दिलाना अपना कर्तव्य समझते थे । यदि हम प्रेमचन्द युग के उपन्यासों पर दृष्टिपात करें तो प्रतीत होगा कि प्रेमचन्द युग के उपन्यासकार इन दूसरे प्रकार के नेताओं से अधिक प्रभावित हुए थे । उन्होंने अछूत समस्या को सुलझाने के लिए तत्कालीन सुधारकों

और राजनीतिक नेताओं का साथ ही नहीं दिया है प्रत्युत, उनसे भी दो कदम आगे बढ़कर अछूतोद्धार का पुनीत कार्य अपने ~~हा~~ हाथों में ले लिया है । उन्होंने अपने उपन्यासों में जहां एक ओर अछूत समस्या के प्रायः सभी आयामों का यथार्थतः वर्णन किया है, वहां दूसरी ओर उन्होंने इस समस्या के निवारण के लिए कई प्रकार के समाधान भी प्रस्तुत किए हैं ।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि प्रेमचन्द युग के लेखकों ने अछूत समस्या से जुड़े हुए खानपान के रूढ़िवादी परंपरागत नियमों का विरोध किया है । उन्हें दूसरे सवर्ण हिन्दुओं के समान सम्मान का अधिकारी माना है । वैवाहिक सम्बन्धों में उनकी जो अवगणना की जाती थी उसकी कड़ी और कटु आलोचना करते हुए उन्हें वैवाहिक सम्बन्धों को स्थापित करने का पूर्ण अधिकारी भी घोषित किया गया है । इसी प्रकार मंदिरों में उनके प्रवेश बंद को लेकर उन्होंने विरोध प्रदर्शन किया और अपनी औपन्यासिक कृतियों में जगह-जगह पर इसके लिए विद्रोह भी करवाये । इतना ही नहीं पूजा-पाठ में भाग लेने की स्वतंत्रता भी उन्हें दिलाने के भरसक प्रयत्न हुए । इस दिशा में प्रेमचन्द , पाण्डेय बेचन शर्मा "उग्र", आदि की औपन्यासिक कृतियां अपना विशेष महत्व रखती हैं ।

प्रेमचन्द द्वारा प्रणीत उपन्यासों में कर्मभूमि, गोदान आदि उपन्यासों में अछूत समस्या के नाना आयामों को पर्याप्त विस्तार के साथ चित्रित किया गया है । प्रेमचन्द जी न केवल इस समस्या से सम्बद्ध समस्त पहलुओं का यथार्थ आंकलन करते हैं अपितु उनका समाधान भी प्रस्तुत करते हैं । प्रेमचन्द अछूतों को अपवित्र नहीं मानते थे और इसलिए उनके खान - पान के निषेध का वे तहेदिल से विरोध करते थे । अतः वे अपने पात्रों के माध्यम से उन्हें सम्पूर्ण सम्मान तथा सभी प्रकार के अधिकार दिलाने की चेष्टा करते हैं, जिनसे उन्हें वंचित रखा गया है । कर्मभूमि उपन्यास का नायक अमरकान्त गांव में जाकर इस वर्ग के लोगों के साथ खाता-पीता ही

नहीं है, प्रत्युत उनके सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक उद्धार के लिए रचनात्मक कार्य भी करता है । उस समय प्रेमचन्द जी गांधीवादी विचारों से प्रभावित थे, अतः कर्मभूमि का नायक अमरकान्त भी गांधीवादी विचारों से प्रभावित लगता हैं और अछूतोद्धार के लिए प्रयः उन सभी उपायों को अंगीकृत करता है जिन्हें गांधी जी करते थे । प्रस्तुत उपन्यास में अमरकान्त सामाजिक आन्दोलन को राजनीतिक रूप देता है और अछूतों की समस्या का समाधान भारत की स्वाधीनता में देखता है । लेखक अछूत आन्दोलन का नेतृत्व सवर्ण हिन्दुओं से कराता है और यह तत्कालीन राजनीतिक परिदृश्य को देखते हुए यथार्थ भी लगता है , क्योंकि उस समाज में उस समय अनेक नेताओं ने गांधी जी से प्रेरणा ग्रहण करते हुए अछूतोद्धार के कार्य को अपना एक मिशन बनाया था । कर्मभूमि उपन्यास में हम देखते हैं कि ग्रामीण क्षेत्रों में अमरकान्त और नगर में डॉ० शान्ति कुमार, सुखदा आदि सवर्ण पात्र अछूतोद्धार के आंदोलनों को गति देते हैं । वे उनके साथ अतीत में किये गये और वर्तमान में हो रहे अत्याचारों और अन्यायों की कड़ी आलोचना करते हैं और उनको सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, नियोग्यताओं और वर्जनाओं से मुक्ति दिलाने की चेष्टा करते हैं । डॉ० शांति कुमार तथा सुखदा उन्हें मंदिरों में प्रवेश दिलाते हैं जिससे वे बड़ी निडरता के साथ पाठ-पूजा करने का अवसर पा सके । इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि प्रेमचन्द युग ने सवर्ण हिन्दू नेता अछूत वर्ग की समस्याओं को उनकी समस्याएं मानकर चलते हैं और उनके आन्दोलनों का उत्तरदायित्व भी स्वयं ग्रहण करतें हैं । यह सभी कुछ गांधीवाद के प्रभाव को सूचित करता है ।

अछूत वर्ग के साथ विवाह सम्बन्धों को हमारे यहां अनैतिक एवं अधार्मिक समझा जाता है । प्रेमचन्द ने इन विवाह सम्बन्धों के निषेध पर कड़े प्रहार किये हैं । गोदान उपन्यास में उन्होंने एक सवर्ण हिन्दू परिवार के साथ एक अछूत परिवार का रोटी-बेटी का व्यवहार स्थापित करवाया है । यह प्रेमचन्द के प्रगतिवादी चिंतन का परिणाम है । प्रस्तुत उपन्यास

में ब्राह्मण मातादीन और शिलिया चमारिन का विवाह सम्बन्ध इस तथ्य की पुष्टि करता है । सामाजिक दृष्टि से चमारिन शिलिया और ब्राह्मण मातादीन का प्रेम, विवाह, खान-पान आदि सभी कुछ अवैध माना जाता था । तत्कालीन समाज उसे अधर्म की कोटि में रखता था । परंतु प्रेमचन्द जी अछूत वर्ग के लोगों को समाज में प्रतिष्ठा दिलाने के लिए और सवर्ण हिन्दुओं के खोखलेपन तथा उनके मिथ्याभिमान को निरावरण करने के लिए यह सभी कुछ वैद्य तथा उचित घोषित करता है । प्रेमचन्द जी का यह कार्य उस समय के सामाजिक विधान के प्रति एक क्रान्तिकारी कदम था म। जिसे हर स्थिति में आवकार्य ही नहीं श्लाघनीय समझा जा सकता है ।

प्रस्तुत उपन्यास में सवर्ण हिन्दुओं के पाखंड और मिथ्याभिमान पर कई व्यंग्य बाण कसे गये हैं । एक स्थान पर मातादीन से कहा गया है —" तुम बड़े नेमी-धर्मी हो । उसके {शिलिया चमारिन} साथ सोओगे, लेकिन उसके हाथ का पानी नहीं पिओगे ।" [47] इसी प्रसंग के सन्दर्भ में शिलिया का पिता संपूर्ण ब्राह्मण वर्ग पर व्यंग्य बाण छोड़ते हुए कहता है — "तुम हमें ब्राह्मण नहीं बना सकते, मुदा हम तुम्हें चमार बना सकते हैं । हमें ब्राह्मण बना दो, हमारी सारी बिरादरी बनने को तैयार है । जब यह सामरथ नहीं है, तो फिर तुम चमार बनो । हमारेक्ष साथ खाओ - पिओ, हमारे साथ उठो-बैठो, हमारी इज्जत लेते हो तो अपना धर्म हमें दो ।" [48] प्रस्तुत उपन्यास में जिन वैवाहिक सम्बन्धों को हिन्दू शास्त्रों में अवैध बताया गया है उन्हें ये लोग वैध सिद्ध कर देते हैं । मातादीन के मुं में अस्थि का टुकड़ा देकर वे उसका धर्म भ्रष्ट कर डालते हैं । यहां ऐसा प्रतीत होता है कि व सवर्ण हिन्दुओं को निरावरण करने में लेखक गौरव का अनुभव करता है । इसी उपन्यास में प्रायश्चित का जो विधान बताया है लेखक उसका भी मखौल उड़ाता है । प्रायश्चित के लिए ब्राह्मण सैकड़ों रूपये खर्चम्र करवाते हैं । मातादीन को शुद्ध गोबर खिलाया जाता है । गो-मूत्र पिलाया जाता है परन्तु उनका यह प्रायश्चित एक ढकोसला प्रमाणित

होता है क्योंकि बाद में स्वयं मातादीन उसे पूरा पाखंड कहते हुए, चमारों के साथ रोटी-बेटी का सम्बन्ध स्थापित कर देता है । मातादीन के शब्दों में मानो लेखक की आत्मा ही बोल उठती है -" मैं ब्राह्मण नहीं चमार ही रहना चाहता हूं । जो अपना धर्म पाले वही ब्राह्मण है जो धर्म से मुंह मोड़े वह चमार है ।" [49] इस सन्दर्भ में मोहनलाल रत्नाकर अपना स्पष्ट अभिमत देते हुए लिखते हैं --" वस्तुतः प्रेमचन्द अपने समय के समाज सुधारकों तथा राजनीतिक नेताओं को भी कुछ आगे बढ़कर, अछूत समस्या को सुलझाने का प्रयत्न करते हैं । वे अछूतों को पूर्ण प्रतिष्ठा दिलाते हैं । उनके सभी प्रकार के अधिकारों का सबल शब्दों में समर्थन करते हैं । उनका चिंतन समय से भी कुछ आगे चलता है, वे अछूतों और सवर्ण हिन्दुओं में किसी प्रकार का कोई भेदभाव नहीं रखना चाहते हैं । [50]

प्रेमचन्द के उपरांत पाण्डेय बेचन शर्मा "उग्र" अछूत समस्या को यथार्थतः आंकलित करते हैं । उनके उपन्यास बुधुआ की बेटी (वही उपन्यास बाद में मनुष्यानंद नाम से प्रकाशित हुआ) में लेखक ने पंडितों के पाखण्ड को बेनकाब किया है । इसमें लेखक धर्म के ठेकेदारों और सवर्ण हिन्दुओं को भी आडे हाथों लेता है । लेखक का मानना है कि जो लोग अछूतों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं और जिन्होंने अपने स्वार्थ के लिए अछूतों को पतित बनाया है उन्होंने हमारे देश और समाज को बहुत ही क्षति पहुंचायी है । इसी उपन्यास में एक अछूत पात्र सवर्ण हिन्दुओं के सन्दर्भ में कहता है —" नाश हो ऐसे देहाती या शहरी पापिओं का जो हमसे नींच से नींच काम कराकर भी हमें आदमी की तरह खाने-पहनने नहीं देते । ऐसों के ही हौंस ठिकाने लाने के लिए तो बाबा अघोडी शहर के कुछ भले आदमी और हम उद्योग कर रहे हैं ।" [51] उग्र जी के प्रस्तुत उपन्यास में अछूत पात्रों के कठोर प्रहार उच्च वर्णीय हिन्दुओं के ढोंग - ढकोसलों का पर्दाफास करते हैं । इस प्रकार वे अछूतों को समाज में प्रतिष्ठा और गौरव दिलाने का प्रयत्न करते हैं । वे समाज की रूढिवादी पुरानी

जर्जर मान्यताओं , उनके चलते ही हो रहे अमानुषिक व्यवहारों, संकीर्ण परिधियों और थोपी गयी नियोग्यताओं को तोड़ने -फोड़ने की प्रेरणा भी देते हैं । प्रस्तुत उपन्यास में उग्र रूढ़िवादी सवर्ण हिन्दुओं के पाखंडों के खोखलेपन को प्रदर्शित करते हुए लेखक यह प्रमाणित करना चाहता है कि इन्हीं लोगों के कारण अछूत समस्या पैदा हुई है और दिन-ब-दिन जटिल होती जा रही है । इस सन्दर्भ में लेखक कहते हैं --"यद्यपि यहां अनेक हिन्दू हैं , जिनके यहां कुत्ते भी पले हैं और एक नहीं अनेक । भंगी समाज का मैला फेंकने के कारण पतित है और उसी मैले को खाने वाला कुत्ता शुद्ध है । वसुधैव कुटुम्बकम् सिद्धान्त आदि के आविष्कारक इन हिन्दुओं का ऐसा पतन हो गया । [52]

उच्चवर्गीय हिन्दुओं ने अछूतों के अधिकारों को छीनकर उन पर जो अनगिनत अत्याचार किये तथा उन्हें घृणित एवं उपेक्षित जीवन व्यतीत करने पर विवश किया गया । इन सबका उग्र जी कठोर शब्दों में विरोध करते हैं । इतना ही नहीं वे उन्हें उनके सभी प्रकार के अधिकार दिलाना चाहते हैं । हिन्दू समाज में खान-पान, विवाह, धार्मिक पूजा - पाठ इत्यादि को लेकर जो नियोग्यताएं स्थापित की गयी हैं उनको वे नष्ट करना चाहते हैं । उनके इस कार्य में ब्राह्मण लोगों का विरोध रहा है । अतः उनका विरोध करते हुए कहते हैं --" शंहर के किसी "छूना - मत"पंडित से बचाए योग्य दिन पूछा जाता था , जिसे पंडित महराज गंगाजल से धुले हुए कुछ पैसे लेकर और दस-पांच बार "दूर रह, दूर रह" कह बता देते थे ।" [53]

इस प्रकार हम देखते हैं कि उग्र जी ने प्रस्तुत उपन्यास के द्वारा अछूत समस्या को भलीभांति आकलित किया है । उग्र जी इस बात को घोर अन्याय समझते थे कि अछूत वर्ग के लोगों को मंदिर में प्रवेश नहीं दिया जाता था । वे कहते थे कि ऐसी समाज रचना होनी चाहिए कि जिसमें वे लोग बिना रोकटोक के मंदिरों में जाकर ईश्वर भजन कर सके । फलतः प्रस्तुत उपन्यास में अघोडी बाबा के नेतृत्व में एक जुलूस निकलता है जो

अछूतों को विश्वनाथ के दर्शन करवाता है । पंडित पुरोहित इस बात को लेकर हिंसात्मक संघर्ष पर उतर आते हैं, परन्तु इस संघर्ष में अछूत ही जीतते हैं । इस संदर्भ में लेखक ने अघोडी बाबा जैसे व्यक्ति का चित्रण कुछ अलौकिक ढंग से किया है जो थोड़ा अस्वाभाविक लगता है परन्तु इससे इस तथ्य पर कोई आघात नहीं पहुंचता कि लेखक अछूतों को उनका अधिकार दिलाने के पक्ष में है और वे चाहते हैं कि मंदिरों में अछूतों का प्रवेश बिना किसी रोक-टोक के हो । इस उपन्यास में यह भी प्रत्यक्ष हुआ है कि लेखक वही चाहता है कि उच्च वर्ण के लोग निरीह निर्दोष दलित जाति के लोगों के सम्मान और ४ भोलेपन से खिलवाड करें । वह इन तथाकथित उच्च वर्ण के लोगों की वर्जना करते हैं और प्रमाणित करता है कि ये लोग अपने बौद्धिक चातुर्य द्वारा दलित वर्ग की लाचार दर्जी का अनुचित लाभ उठाते हैं । प्रस्तुत उपन्यास का घनश्याम एक ऐसा सवर्ण हिन्दू है जो बुधुआ की बेटी को फंसाता है । बुधुआ भंगी है । छल-कपट तथा प्रलोभनों के द्वारा वह बुधुआ की बेटी रधिया की जवानी को भ्रष्ट करता है । उसे प्रेमजाल में फंसाकर उसे वैश्या बना देता है । जब वह सावधान हो जाती है तब घनश्याम उसके साथ दुर्व्यवहार करता है । यहां इस तथ्य को भी रेखांकित किया जाय कि लेखक ऐसे दुराचारी नवयुवकों का पर्दाफास करना चाहता है । और चाहता है कि ऐसे लोगों का सामाजिक बहिष्कार हो ताकि रधिया जैसी भोली और अबोध बालिकाएं नष्ट-भ्रष्ट होने से बच सकें । डॉ० मोहनलाल रत्नाकर प्रेमचन्द और उग्र जी के दलित विमर्श को विश्लेषित करते हुए लिखते हैं --" प्रेमचन्द ने अछूतों की आर्थिक अवस्था को ग्रामीण जीवन के संदर्भ में देखा, समझा और उस पर विचार किया । उग्र उनकी आर्थिक स्थिति का अध्ययन, उनके नागरिक - जीवन के संदर्भ में भी करते हैं । वे चाहते हैं कि अछूतों के वेतन बढ़ाने के लिए ट्रेड युनियन पेशेवर संस्थाओं आदि का भी संगठन किया जाय । उग्र का यह पग तत्कालीन सामाजिक चेतना से एक पग आगे बढ़ा हुआ कहा जा सकता है । वर्तमान जीवन की चेतना इस तथ्य की प्रमाण है । आज वह

सभी कुछ क्रियात्मक रूप ले रहा है , जिसकी कल्पना उग्र ने अघोडी बाबा के माध्यम से की थी ।" 54

निष्कर्ष :—

समग्र अध्याय के विहंगावलोकन से हम निम्नलिखित निष्कर्षों को रेखांकित कर सकते हैं :

§1§ प्रेमचन्द काल में हमें "बुधुआ की बेटी" §मनुष्यानन्द§, "कर्मभूमि" , गोदान, रंगभूमि, गबन, अलका, निरूपमा, कुल्लीभाट, अंतिम - आकांक्षा प्रभृति उपन्यासों में दलित चेतना दृष्टिगत होती है ।

§2§ इस काल खण्ड के लेखकों की दलित चेतना उग्र जी जैसे एकाद लेखक को छोड़कर गांधीवादी विचारधारा से अनुप्रेरित मिलती है । गांधीवादी समाधानों में उनकी आस्था बरकरार है । परन्तु उग्र जी के मनुष्यानंद तथा प्रेमचन्द जी के गोदान में कहीं कहीं गांधीवादी आस्था का अतिक्रमण भी दृष्टिगत होता है ।

§3§ प्रेमचन्द युग के लेखकों ने दलित वर्ग के लोगों के साथ होने वाले अन्यायों, अत्याचारों और अमानुषिक व्यवहारों का न केवल तीखे शब्दों में विरोध किया है, अपितु उनके जीवन की समस्याओं को यथार्थतः आंकलित करते हुए उनके समाधान भी प्रस्तुत किये हैं ।

§4§ इस कालखंड के लेखकों ने अछूत वर्ग के लोगों को भारतीय समाज का एक अभिन्न अंग माना है, इतना ही नहीं राष्ट्रीय स्वाधीनता के साथ साथ उनकी स्वाधीनता के लिए भी उन्होंने संघर्ष किया है । वे वे महात्मा गांधी की भांति अछूतोद्धार की प्रवृत्ति को स्वाधीनता संग्राम की प्रवृत्ति ही मानते हैं ।

§5§ प्रेमचन्द युग के लेखकों ने यह प्रमाणित किया कि सवर्ण हिन्दुओं के अन्याय और×दुर्व्यवहार के कारण ही इस समस्या का उद्भव हुआ और उसके कारण ही वह दिन प्रति दिन जटिलतम होती

गयी ।

(6) फलतः इस काल खण्ड के लेखकों ने न केवल उच्चवर्णी लोगों की भर्त्सना की , प्रत्युत उन्हें अपने अतीत के पापों के लिए प्रायश्चित करने की प्रेरणा भी दी ।

(7) इन लेखकों ने प्रायः अछूत आन्दोलनों का नेतृत्व उच्चवर्गीय लोगों को सौंपा ताकि पाखण्डी पंडे-पुरोहितों का और कूटनीतिज्ञ अंग्रेजों की काली करतूतों का मुंहतोड उत्तर दिया जा सके ।

(8) इन उपन्यासकारों ने दलित वर्ग के सामाजिक आन्दोलनों को राजनीतिक आन्दोलनों के साथ जोड़ दिया और इस प्रकार इन्हें अधिक बलवत्तर तथा प्राणवान बनाया ।

(9) सामाजिक समस्याओं और दलितों पर थोपी गयी निर्योग्यताओं के साथ साथ इस काल खण्ड के कुछ लेखकों ने इस वर्ग की आर्थिक स्थिति की ओर भी प्रामाणिक दृष्टिपात किया और उन्हें उठाने के लिए समुचित समाधान प्रस्तुत किया ।

सन्दर्भ - सूची :--

1- द्रष्टव्य : The Novel and the people : Ralph Fox : P: 53 ॥

2- द्रष्टव्य : ------ वही ----- पृ. 53

3- भारतीय नवलकथा - भाग-1, रमणलाल जोशी - पृ. 6 /7 /120

4- द्रष्टव्य : मनुष्यानन्द : पाण्डेय बेचन शर्मा "उग्र" - पृ. 128

5- द्रष्टव्य : हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा - पृ. 54

6- द्रष्टव्य : प्रेमचन्द : डॉ0 प्रतापनारायण टंडन : पृ. 66

7- द्रष्टव्य : प्रेमचन्द और कर्मभूमि : डॉ0 श्रीराम वशिष्ठ - पृ. 78

8- द्रष्टव्य : कर्मभूमि : प्रेमचन्द - पृ. 148

9- द्रष्टव्य : प्रेमचन्द : व्यक्ति और साहित्यकार - डॉ0 मन्मथनाथ गुप्त - पृ. 313

10- द्रष्टव्य : ------- वही ----- पृ. 314

11- द्रष्टव्य : हिन्दी उपन्यास : सामाजिक चेतना -डॉ0 कुंवरपाल - सिंह , पृ. 96

12- द्रष्टव्य : कर्मभूमि : प्रेमचन्द : पृ. 267

13- द्रष्टव्य : हिन्दी उपन्यास : सामाजिक चेतना - डॉ0 कुंवरपाल - सिंह - पृ. 94

14- द्रष्टव्य : कर्मभूमि : प्रेमचन्द : पृ. 157

15- गोदान : प्रेमचन्द : पृ. 261

16- द्रष्टव्य : गोदान : प्रेमचन्द : पृ. 251

17- --------- वही ----- पृ. 250-251

18- --------- वही ----- पृ. 262

19- --------- वही ----- पृ. 263

20- --------- वही ----- पृ. 357

21- --------- वही ----- पृ. 357

22- द्रष्टव्य : हिन्दी उपन्यास : सामाजिक चेतना : डॉ0 कुंवरपाल सिंह - पृ. 100

23- प्रेमाश्रम - प्रेमचन्द - पृ. 274

24- -------- वही ---- पृ. 280

25- आलोचना प्रभावित उपन्यास : अंक-जनवरी-1983, पृ. 96

26- युगनिर्माता प्रेमचन्द : डॉ0 पारूकान्त देसाई - पृ. 27

27- ~~रंगभूमि : प्रेमचन्द : -पृ.~~ દ્રષ્ટવ્ય : યુગ નિર્માતા પ્રેમચંદ : ડૉ. પારુકાન્ત દેસાઈ : પૃ : 77.

28- रंगभूमि : प्रेमचन्द : पृ. 558

29- गबन - : प्रेमचन्द : पृ. 105

30- ------ वही ---- पृ. 157

31- ------ वही ---- पृ. 135

32- ------ वही ---- पृ. 198

33- यह घटना सन् 1997 की है ।

34- निरुपमा : सूर्यकान्त त्रिपाठी : पृ. 31

35- निराला का गद्य साहित्य : प्रेम प्रकाश : पृ. 60

36- कुल्लीभाट : निराला : पृ. 90

37- कुल्लीभाट : निराला : पृ. 106

38- द्रष्टव्य : हिन्दी उपन्यास : डॉ0 शिवनारायण श्रीवास्तव - पृ. 281

39- पारख प्रकाश : लेख : महात्मा ज्योतिराव फूले : पृ. 25

40- ~~सन्दर्भ~~ : સંદેશ : ગુજ. દૈનિક : દિ. ૧-૪-૧૯૯૪.

41- लेख : महात्मा ज्योतिराव फूले : पारख प्रकाश : पृ. 26

42* (अप्रैल-मई-जून-1996)

42- अन्तिम आकांक्षा - सियाराम शरण गुप्त : पृ. 160-161

43- प्रेमचन्द युग का हिन्दी उपन्यास : डॉ0 मोहनलाल रत्नाकर - पृ. 118

44- बाबा साहब डॉ0 आम्बेडकर : सम्पूर्ण वाग्मय , खण्ड- 1, पृ. 76

45- द्रष्टव्य : ----- वही ----- पृ. 57

46- द्रष्टव्य : ----- वही ----- पृ. 58

47- गोदान : प्रेमचन्द : पृ. 261

48- ------- वही ------ पृ. 260

49- ------- वही ------ पृ. 357

50- प्रेमचन्द युग का हिन्दी उपन्यास - डॉ0 मोहनलाल रत्नाकर - पृ. 228-229

51- मनुष्यानन्द : पाण्डेय बेचन शर्मा "उग्र" - पृ. 142

52- ------- वही ------ पृ. 68

53- ------- वही ------ पृ. 144

54- प्रेमचन्द युग का हिन्दी उपन्यास : डॉ0 मोहनलाल रत्नाकर - पृ. 230